श्रीकृष्ण-सन्देश
श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
वर्ष : ६ • अंक :

निगमामृत

(धरतीमातासे)

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो
ऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतोऽक्षतो
ऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥
(अथर्व० १२।१।११)

ये गिरिपर्वत हिमवन्त गहन वन तेरे,
हे मातृभूमि ! हों मोदनिकेतन मेरे ।
पिङ्गल श्यामल अरुणाभ, अनूप अचञ्चल,
है हरिपालित बहुरूप धराका अञ्चल ।
अविजित, अक्षत, आघातरहित नित होकर,
मैं करूँ यहाँ अधिवास त्रास सब खोकर ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो
यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्
सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥
(अथर्व० १२।१।३)

जिस मातृभूमिके अङ्क उदधि लहराता,
सरिता करती कलगान सलिल छवि पाता ।
खेती होती है अभिमत अन्न उपजता,
जिसपर जड-जंगम विश्व सुहाता सजता ।
यह प्राणि-जगत भी जहाँ तृप्त है होता,
चलता फिरता है जहाँ बैठता सोता ।
वह भूमि कृपा कर हमको वहीं बसाये,
हम जहाँ प्रथम नित मधुर पेय रस पायें ॥

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक
ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला

श्रीकृष्ण संवत् ५०७०

वर्ष : ६ अङ्क : ७
फरवरी १९७१

वार्षिक शुल्क : ८.००
आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

विषय-सूची

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

(फरवरी १९७१)

★

श्रीकृष्ण-जन्मस्थावपर आकर मुझे बहुत सुख मिला, अपार हर्ष हुआ। यह पावन स्थली भारतके प्रमुख स्थानोंमें से है। जिस प्रकार इसका पुनरुद्धार हो रहा है, बड़ा ही अच्छा और सुन्दर है।

रमेशचन्द्र माथुर
उपसचिव, सांस्कृतिक-कार्य-विभाग
उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शन करके अति शान्ति प्राप्त हुई। इस स्थानका जितना जल्द पुनरुद्धार हो, अच्छा है।

बालकृष्ण डागा
२० ए, राजा ब्रजेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—७

मेरे लिए जीवनका पुनीततम क्षण है, जब मैंने सच्चिदानन्दके जन्मस्थानका दर्शन कर आत्म-सुख लाभ किया। हिन्दुत्वकी मूर्तिमत्ता मथुराका पर्याय है।

विष्णुदत्त राकेश (हिन्दी विभाग)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शन कर हृदय गद्गद हो गया। धन्य हैं वे दानवीर, जिन्होंने इस पवित्र कार्यमें सहयोग दिया है।

काका हाथरसी
संगीत कार्यालय,
हाथरस।

I am delighted to visit Shri Krishna Janmasthan. It gave me pleasure to find that the institute is seen by a trust. It seems the trust is managing the affairs of the temple very well.

Neki Ram
Revenue Minister
Haryana.

I have visited the temple today. I find that the arrangement in the Guest House is very good.

J. A. Gandhi, Architect
E-14, N. ASE, II
New Delhi-49.

We came to visit the place today. Our contingent of 230 Guides on their way to Bombay stopped at Mathura for the day. This place (Lord Krishna's Birthplace) is a beautiful place & kept very neat & tidy. We have had a very peaceful time here.

Miss. M. Sen,
State Organising
Commissioner (Guides)
Punjab-Chandigarh

This is a place of prime importance for all human beings may he be Hindu, or of any religion. Here is a place which teahces all man-kind to be full of devotion, to be just & truthful.

I wish all success to the Trust.

A. P. Valvade
F L. T. L. T.
Air Force Station,
Agra.

There could hardly be any place like this where our dear Lord Krishna was born. It is very exciting to see this worthy place. I happen to come over here as I am one of the participart in the 2nd Asian Motor Rally, on my return from Dacca I visited this long cherished place. I thank all the people who have joined their hands to keep this place a lovable memory of Lord Krishna. God bless all those

K. S. Raina
Jadid Moholla
Baramula-Kashmir.

प्रपत्र : चार

(नियम ८ के अन्तर्गत)

१. प्रकाशन स्थल	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ केशवदेव कटरा, मथुरा
२. प्रकाशन-आवृत्ति	:	मासिक
३. मुद्रकका नाम	:	देवधर शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
४. प्रकाशकका नाम	:	देवधर शर्मा संयुक्त मन्त्री, श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवासंघ मथुरा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ केशवदेव कटरा, मथुरा
५. सम्पादकका नाम	:	पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कैलगढ़ कालोनी जगतगंज, वाराणसी
६. स्वत्वाधिकार	:	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ केशवदेव कटरा, मथुरा

मैं, देवधर शर्मा, एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार सही हैं।

देवधर शर्मा

फरवरी १९७१ — संयुक्त मन्त्री, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ

प्रकाशक
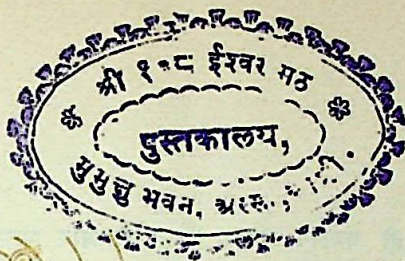
श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ६] मथुरा, फरवरी १९७१ [अङ्क : ७

धर्म और सत्यका निर्णय

धर्म क्या है ? इस प्रश्न पर मैं संक्षेपसे विचार करता हूँ। जिन्हें शास्त्रोंका बहुत थोड़ा ज्ञान है तथा जो विवेकशून्य हैं, वे धर्माधर्मका विवेचन नहीं कर सकते। जो विद्यावृद्ध—अनुभववृद्ध पुरुषोंसे अपना सन्देह नहीं पूछता; वह अधर्मको भी धर्म मानकर गड्ढेमें गिर जाता है। बहुत-से ग्रन्थोंके पृष्ठ खोलकर बाँच लेनेसे भी धर्मका निर्णय होना कठिन है; क्योंकि उनमें पूर्वापरविरोधी वचन भी मिल जाते हैं। धर्मशास्त्र अनेक हैं तथा उनके प्रतिपादक ऋषि-मुनियोंकी संख्या भी थोड़ी नहीं हैं। कोई एक ग्रन्थ या एक ऋषि ऐसा नहीं है; जिसका कथन सबके लिए प्रमाणभूत हो। कुछ लोग परम ज्ञानरूप दुष्कर धर्मको तर्कके द्वारा जाननेका प्रयत्न करते हैं; परन्तु एक श्रेणीके बहुसंख्यक मनुष्य ऐसा कहते हैं कि 'धर्मका ज्ञान वेदोंसे होता है।' मैं इन दोनों मान्यताओंके ऊपर दोषारोपण नहीं करता; किन्तु तर्क अप्रतिष्ठित है; अतः केवल उससे ही धर्मका निर्णय नहीं हो सकता। केवल वेदोंद्वारा भी सभी धर्म-कर्मोंका विधान नहीं होता है; इसलिए धर्मज्ञ महर्षियोंने उस कर्मको धर्म माना है जिससे समस्त प्राणियोंका अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध हो सके। उक्त उत्तम धर्मका सिद्धान्त यह है कि जिस कार्यमें हिंसा न हो, वही धर्म है। महर्षियोंने धर्मका प्रवचन इसलिए किया है, कि किसी भी प्राणीकी हिंसा

न होने पावे। धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं। इसलिए जो धारण—प्राणरक्षासे युक्त हो वही धर्म है। यही धर्मशास्त्रोंका निर्णय है।

जो दस्यु या बटमार अन्यायपूर्वक दूसरोंके धन आदिका अपहरण कर लेना चाहते हैं, वे कभी अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिए दूसरोंसे सत्य-भाषणरूप धर्मका पालन कराना चाहते हों तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिण्ड छुड़ानेकी चेष्टा करे। किसी तरह कुछ बोले ही नहीं। किन्तु यदि बोलना अनिवार्य हो जाय अथवा न बोलनेसे लुटेरोंको सन्देह होने लगे तो वहाँ दूसरे लोगोंकी रक्षाके उद्देश्यसे असत्य बोलना ही ठीक है। ऐसे अवसर पर उस असत्यको ही बिना विचारे सत्य समझे। जो मनुष्य किसी कार्यके लिए प्रतिज्ञा करके उसका प्रकारान्तरसे उपपादन करता है, वह दम्भी होनेके कारण उसका फल नहीं पाता है—ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। प्राणसंकट-कालमें, विवाहमें, समस्त कुटुम्बी जनोंके प्राणान्तका समय उपस्थित होनेपर तथा हँसी-परिहासके प्रसंगमें यदि असत्य बोला जाय तो वह वास्तवमें असत्य नहीं माना जाता है। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् उक्त अवसरोंपर मिथ्या बोलनेमें पाप नहीं समझते हैं। यदि लुटेरोंके समक्ष झूठी शपथ खानेपर वध और बन्धनसे छुटकारा पाया जासके तो वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है। जहाँतक वश चले, किसी तरह उन लुटेरोंको धन नहीं देना चाहिए; क्योंकि पापियोंको दिया हुआ धन दाताको दुःख देता है। अतः धर्मके लिए झूठ बोलनेपर मनुष्य असत्य-भाषणके दोषका भागी नहीं होता है। सत्य बोलना उत्तम धर्म है, सत्यसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है; परन्तु यह समझ लो कि सत्पुरुषों द्वारा आचरणमें लाये हुए सत्यके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान अत्यन्त कठिन होता है। प्राणियोंकी हिंसा न हो—यह सबसे बड़ा धर्म है। यही मेरा मत है। किसीकी प्राणरक्षाके लिए झूठ बोलना पड़े तो बोल दे; किन्तु उसकी हिंसा किसी प्रकार भी न होने दे। मान लो किसीने सदा सत्य बोलनेका नियम लिया हो और वह एकान्त वनमें रहकर जप-तप कर रहा हो; उस समय कुछ भयभीत प्राणी आकर उसके आश्रमके आस-पास छिप गये हों और उनका पता लगाते हुए हिंसक लुटेरे आकर उस सत्यव्रतीसे सत्यकी शपथ दिलाकर उन छिपे हुए मनुष्योंका पता पूछने लगें तो उसका क्या कर्तव्य होगा। यदि वह सत्यकी रक्षाके लिए उनका पता बता दे तो वे बेमौत मारे जाँयगे। उस दशामें वह सुस्पष्ट झूठ बोलकर ही उनके प्राण बचा सकता है। उस दशामें किया हुआ वह असत्य भाषण ही महान् धर्म होगा।

[महाभारत कर्णपर्वसे]

दो गीत

श्रीहरिभाऊ उपाध्याय

राधा-माधवके दिव्य प्रेमकी मधुभूमि

मधुवन[1]

आज मधुवन देख पाया, आज मधुवन देख आया।
कृष्ण राधाने जहाँ मिल, प्रीतिका मधुगीत गाया॥
कृष्णमय था राधिकामय है यहाँकी रुचिर काया।
एकता उरमें, भले ही नाम दो या रूप पाया॥
प्रीतने जगरीतको है जीत जयका गान गाया।
जगरीतने प्रभु प्रीतसे है सहजमें नवज्ञान पाया॥
कृष्ण राधाके बहाने प्रेमका नवनीत लाया।
परम पावन मधुर मंजुल रूप-रसका मीत आया॥

राधाभावसे राधाकी आराधना

राधा बनूँगी[2]

आज मैं राधा बनूँगी, साज सब सुन्दर सजूँगी।
प्रिय कन्हाईके लिए घरबार सब सुखसे तजूँगी॥
तरु, लता, तृण, पातमें प्रिय-प्रेमका दर्शन करूँगी।
कानसे प्रिय-गानकी धुन अमर अम्बरसे सुनूँगी॥
रातमें, दिनमें, प्रतिक्षण नामकी माला जपूँगी।
ध्यानमें, मनमें, मधुर मूरत सजाकर अब रखूँगी॥
आयँगे प्रिय मिलनको मैं भाग मधुवनमें छिपूँगी।
जब थकेंगे, दौड़कर, चुपचाप हियमें बाँध लूँगी॥

●

---

१. व्रजभूमिका 'मधुवन' भगवान्के लोकोत्तर प्रेमका प्रत्यक्ष शिक्षा-केन्द्र है। उन्होंने पहली बार जगतके इतिहासमें इस नवीन प्रेमकी शिक्षा-दीक्षा मानवको दी है। (ह० उ०)

२. जब बरसाना पहुँचा तो याद आया—'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' यहाँ तो राधा-भावसे ही राधिकाजीका पूजन हो सकता है। वही इस रचना द्वारा किया गया है। (ह० उ०)

सम्पादकीय

हम आत्मनिरीक्षण करें !

मनुष्य एक अद्भुत शक्तिशाली प्राणी है। ईश्वरीय सृष्टिका अनमोल रत्न है। इसे उपयोगी शरीर, मन, इन्द्रिय, बुद्धि और विवेक आदि ऐसे साधन प्राप्त हैं, जिनका विकास करके सूझ-बूझके साथ उपयोग करनेवाला पुरुष असाध्य-साधन कर लेता है; असम्भवको भी सम्भव बना देता है। विज्ञान मानवके अमोघ अध्यवसाय, प्रयत्न और कुशाग्रबुद्धिका ही चमत्कारी परिणाम है; जिसने अद्भुत आविष्कारोंद्वारा मानवकी अतिमानव-शक्तिका परिचय दिया है। अध्यात्म-जगत्में भी वह जीवात्मासे परमात्मा बनकर, नरसे नारायण होकर और मर्त्यसे अमृत ब्रह्म होकर समुन्नतिकी पराकाष्ठा प्रकट कर देता है। अपनी इस सफल साधना द्वारा परम सिद्धि पाकर उसने इस तथ्यको प्रत्यक्ष कर दिया है कि वह ईश्वरका अंश है; साक्षात् ईश्वर ही है; बिन्दुरूपमें सिन्धु है और विस्फुलिङ्गरूपमें साक्षात् वैश्वानर है। यदि वह अपने सर्वात्मभावका विस्मरण न करे तो अखिल विश्वके हितके लिए अद्भुत कार्य कर सकता है। आज वह भौतिक विज्ञानमें भारी उत्कर्ष प्राप्त करके भी आध्यात्मिक ज्ञानसे शून्य होनेके कारण संकीर्णताके घेरेमें बँधा हुआ है और अपनेको एक देश-विशेषका अभिमानी बनाकर अन्य देश या प्रान्तवालोंसे संघर्षमें रत हो गया है। रेडियो, टेलीवीजन तथा राकेट का आविष्कार और चन्द्रविजय आदि कार्य इस बातका संकेत देते हैं कि मानवकी संघटित वैज्ञानिक शक्ति निकट भविष्यमें ही भूगोलकी भांति खगोलके रहस्योंका भी उद्‌घाटन करके उसे विभिन्न ग्रहोंकी धरतीपर विचरण करनेका अवसर प्रदान कर सकती है।

अपनी इस अमूल्य शक्तिका विश्वजनीन उन्नतिकी दिशामें समुचित उपयोग करनेके बजाय वह अनेक मतवादों तथा संकीर्ण स्वार्थोंमें फँसकर सर्वत्र संघर्ष, कलह एवं युद्धकी सृष्टि कर रहा है। यह स्थिति अच्छी नहीं है। हमें आत्मनिरीक्षण करना होगा कि हम क्या हैं और किधर जा रहे हैं ?

वीर पुरुष किसी स्थल-विशेषके अभिमानी नहीं होते। वे एक स्थानको छोड़कर दूसरे स्थानपर जाते और वहीं अपने लिये संमानपूर्ण जगह बना लेते हैं। नीतिकारोंने कहा है कि 'सिंह, सत्पुरुष और हाथी अपना पुराना स्थान छोड़कर नये स्थान बना लेते हैं; परन्तु कौए, कायर और हिरन जहाँ पैदा होते हैं, वहीं मर जाते हैं।' इसलिए हमको शूरोचित पथका

आश्रय लेना चाहिए, लकीरका फकीर नहीं वनना चाहिए। कायरोंकी लीकपर चलना शौर्य और उद्योगकी अवहेलना है। वीर और विवेकी पुरुष 'वावावाक्य प्रमाणम्' मानकर नहीं चलते हैं; वे स्वयं आदर्शके स्थापक होते और अपनी आचरण-संहिता स्वयं वनाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने अनादिकालसे चली आती हुई इन्द्रपूजा बन्द करके गोवर्धन-पूजा परिचालित की, वे राजकुलमें उत्पन्न होकर भी गोपकुलमें पले। उन्होंने राजकुमारोंसे नहीं, गोप-गोपियोंसे प्रीति जोड़ी। उन दीन-वन्धुने दीनोंमें निवास करना अधिक पसन्द किया। राजकुमार और राजकुमारियाँ तो स्वयं उनके चरणोंमें झुकीं। मथुरामें जन्म लेकार भी उन्होंने द्वारकामें राजधानी वनायी और यादव-गणतन्त्रकी स्थापना करके उग्रसेनको राजा वना दिया। स्वयं राजसिंहासनपर वे कभी नहीं वैठे। उन्होंने राष्ट्र, समाज और मानव-हितके लिए जो उचित समझा स्वच्छन्दतापूर्वक किया, किसीका भी लिहाज संकोच नहीं किया। शक्तिके तो वे स्वामी ही थे, अधिकार उनके चरणोंमें लोटता था, तो भी उन्होंने उसकी उपेक्षा करके जन-सेवा ही अपनायी। युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें उन्हींकी अग्रपूजा हुई; परन्तु उन्होंने अपने जिम्मे वहाँ पधारे हुए अतिथियोंकी सेवाका ही काम ले रक्खा था। श्रीकृष्णने यादव गणतन्त्र-राज्यकी स्थापना अवश्य की, परन्तु पारस्परिक फूट यादवोंमें इतनी गहराई तक जड़ जमा चुकी थी कि उस राज्यका पतन अवश्यम्भावी था। इसीलिए दूरदर्शी श्रीहरिने समस्त भारतीय राष्ट्रके हितकी दृष्टिसे युधिष्ठिरके धर्मराज्यकी स्थापनामें विशेष योग दिया। वे बड़े-वड़े राजाओंसे उनका अभिमान चूर्ण करनेके लिए भिड़ जाते थे मगर साधारण जनताको कभी कष्ट नहीं पहुँचने देते थे। गीतामें उन्होंने समत्ववादका ही उद्घोष किया था। उनसे बढ़कर सम्यवादी तथा क्रान्तिकारी कौन हो सकता हैं?

उनके चरित्रसे यह शिक्षा मिलती है कि हमें स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर जनसेवाका ही व्रत लेना चाहिए तथा राष्ट्रके गोधनकी रक्षाके निमित्त सदा जागरूक रहना चाहिए। हिन्दू-समाजमें गौओंको देवताकी कोटिमें रक्खा गया है। वह माता है, कामधेनु है; पूजनीया है, उसकी रक्षाके लिए आन्दोलन किया जाता है; परन्तु वस्तुतः गो-सेवा किसे कहते हैं; इसकी ओर थोड़ा-सा भी किसीका ध्यान नहीं जाता है। गाय द्वारपर बँधी है, किन्तु उसकी काया अस्थिचर्मावशिष्ट दिखायी देती है। न समयपर सानी है, न पानी। न घास है, न दाना। यह कैसी गो-सेवा है? जिन विदेशियोंको हम गोभक्षी कहते हैं, वे भी जबतक गायोंको रखते हैं; उनकी सेवापर विशेष ध्यान देते हैं, उनकी गायें इतनी मोटी और तगड़ी होती हैं कि शरीरपर एक मक्खी भी नहीं वैठती है। यदि प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ हर घरमें एक-दो गाय रखने और उनके पालनकी सुव्यवस्थाका व्रत ले ले तो करोड़ों गौओंकी रक्षा अनायास ही हो सकती है। जव ऐसा हम कर लें तो गो-रक्षा-आन्दोलनकी आवश्यकता ही नहीं रह जायगी। अन्यथा दरवाजेपर गौओंको भूखे रखकर कष्ट देते रहें तो वह भी उनका वध ही है। उस दशामें गोरक्षाका आन्दोलन हमारे लिए ढोंग-मात्र होगा।

यही वात अस्पृश्यताके विषयमें भी कहनी है। मनुष्यमात्रका शरीर पाँचभौतिक है; सवके भीतर अन्तर्यामी रूपसे भगवान् श्रीकृष्ण ही विराजमान हैं; इस दशामें कौन-सी ऐसी

बात शेष है, जिसको लेकर हम किसी दूसरे मनुष्यको अस्पृश्य, घृणित एवं नीच समझें। भगवान् पतितपावन है, वे धर्मरक्षाके लिए अवतार लेकर भी कोल-भीलोंसे, गोप-ग्वारियोंसे मिलनेमें, उनके साथ—उठने-बैठने या खान-पानमें भी कोई परहेज नहीं रखते हैं। उनके नामोच्चारणमात्रसे किरात हूण, अन्ध्र पुलिन्द, पुल्कस आदि म्लेच्छजातियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं; उन भगवान् और उनके नामके रहते हुए भी किसीको नीच या अस्पृश्य मानकर हम उसकी अवहेलना करते रहें तो हम अपनेको आस्तिक कैसे कह सकते हैं? व्यावहारिक परिस्थिति-वश तो एक जातिके लोग भी परस्पर-स्पर्शसे बचते हैं, किन्तु उन्हें अस्पृश्य कहकर कोई अपमानित तो नहीं करता है। यदि सर्वभूतात्माकी ओर दृष्टि न रखकर हम सबसे घृणा करते रहें तो जगत्में घृणा द्वेष और कलहके ही संस्कार भरेंगे। इससे तो हम दोषके ही भागी होंगे। भागवद्-दृष्टि रखते हुए हम 'आश्वचाण्डालगोखरम्' सबको प्रणाम तक कर सकते हैं; फिर ऊँच-नीच-भावना तथा घृणा-द्वेषके लिए अवसर ही कहाँ रह सकता है? समयकी गतिविधिके साथ यदि हमको चलना है तो हमें इस समस्यापर विचार करके अपनी धारणाओंमें यथेष्ट संशोधन और परिवर्तन करना ही पड़ेगा।

इन दिनों हमारी ही उपेक्षाओंके कारण हमारे बहुत-से बन्धु धर्मान्तर ग्रहण करते जा रहे हैं। विदेशी मिशनरियाँ अपार धनराशिको पानीकी तरह बहाती और हमारे भोले बन्धुओंको बहका-बहकाकर धर्मान्तरित करती जा रही हैं। यह स्थिति बड़ी गम्भीर और शोचनीय है। नेपालमें तो धर्मान्तरण कानूनन बन्द है; परन्तु भारतवर्षमें अभी सभी लोगोंको चरने-खानेका अवसर दे दिया गया है। मुसलमान, ईसाई आदि सभी हिन्दुओंको बलात्कारसे या धनका लोभ देकर अपने धर्मको दीक्षा दे रहे हैं। ऐसी दशामें हमें निःसंकोच हो शुद्धिका कार्यक्रम चलाना चाहिए। हमारी सरकारको भी धर्मान्तरण कानूनन बन्द कर देना चाहिए। यदि राष्ट्रको सबल और सुरक्षित रखना है तो प्रत्येक मोर्चेपर ठोस कार्य होना चाहिए। युगके अनुसार नये धर्मशास्त्रों तथा आचारसंहिताओंका निर्माण भी आवश्यक है।

यदि हम शासकके पदपर कार्य कर रहे हैं या शासन-संस्था (सरकार) में रहकर शान्ति और सुव्यवस्थाका उत्तरदायित्व लिये बैठे हैं तो देखें, हम कितनी मात्रामें अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं। यदि हमारे कार्यकालमें देशके भीतर अशान्ति, अव्यवस्था, अराजकता, हिंसा, लूट-मार, बलात्कार आदिकी दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं तो हमें अपनेको इस पदके अयोग्य मानकर स्वतः हट जाना चाहिए नहीं तो प्राणपणसे देशकी अवस्था सुधारनेमें लग जाना चाहिए। देशका जीवन संकटपूर्ण होता जा रहा हो और हम कुर्सियोंके लिए लड़ें। अपनी पार्टीकी ही सरकार बनानेके लिए यत्नशील हो विवेकको भी खो बैठें—यह कितने कलंककी बात है। विदेशी शक्तियाँ देशको निगल जानेकी घातमें अब भी लगी हैं। देशके भीतर भी पञ्चमाङ्गी बैठे हैं और उन्हीं दानवीय शक्तियोंके साथ देशका सौदाकर रहे हैं, फिर भी हम सचेत-सावधान न हों, स्वार्थ और आरामको हराम समझ रामका नाम लेकर देशकी रक्षाके लिए कटिबद्ध न हों, एक होकर कार्य न करें तो हमारे समान देशद्रोही कौन होगा? आग लग जाय उस शासन-संस्थामें, जो जनताको संरक्षण, सु-शान्ति एवं स्वच्छ प्रशासन न दे सके।

इस दिशामें हमारे देशके धनी वर्गको भी सोचना चाहिए। धनका सदुपयोग यही है कि वह राष्ट्र, समाज और लोकके कल्याणमें लगे। क्या हम अपनी बुद्धिसे, विवेकसे जिसको ठीक समझते हैं, उसका वस्तुतः पालन करते हैं? सत्य बोलना उत्तम मानते हुए भी क्या हम पग-पगपर तुच्छ स्वार्थ-सिद्धिके लिए झूठ-कपटका आश्रय नहीं लेते हैं? व्यापारी वर्ग तो व्यापारमें झूठ बोलना जायज ही समझता है—'सत्यानृतं तु वाणिज्यम्'—वाणिज्य सच और झूठका संमिश्रण ही है। जीवनमें कहीं किसी बहाने भी झूठको प्रश्रय दिया जाय तो उससे संकोच मिट जाता है, फिर हम उसे अपना अस्त्र बना लेते हैं और कहीं भी झूठ बोलनेमें हिचक नहीं होती है। धनका दुरुपयोग इतना बढ़ गया है कि उसका वर्णन करना कठिन है। बहुत थोड़े लोग हैं, जिनका धन परोपकार तथा पुण्यके कार्यमें लगता है। शास्त्र कहता है—'अर्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय न स्मृतः'—'धनका एकमात्र उपयोग यही है कि उसको धर्मके कार्यमें लगाया जाय; यदि केवल भोग-विलासमें उसको खर्च किया जा रहा है; तो यह उसका महान् दुरुपयोग है। उस धनसे न अपना वास्तविक लाभ हुआ न देश और समाजका।' महान राजनीतिज्ञ कौटिल्य और कामन्दक कहते हैं कि 'धनका न्यायमार्गसे अर्जन हो, उसका रक्षण और वर्धन भी हो, परन्तु उसका सत्पात्रको दान किया जाय, उत्तम कर्ममें उसका व्यय हो—यह धनवानका परम कर्तव्य है।' आज अधिकांश धनी वर्ग अपने धनका उपयोग प्रायः भोग-विलासमें करता है। उसकी धन-पिपासा और भोग-पिपासा साथ-साथ बढ़ रही है। उसका शरीर तो साढ़े तीन हाथका है, किन्तु उसे अपने रहनेके लिए सभी बड़े-बड़े शहरोंमें दस-दस बीस महल चाहिए; वह कभी यह नहीं सोचता कि छोटे-छोटे हजार पाँच सौ घर बनवा कर उन हजार-पाँच सौ आदमियोंको उनमें बसा दें, जो आज बेघर-बारके फुटपाथोंपर और पेड़ोंके नीचे सोते हैं। ऐसे ही लोग गिरोह बनाकर धनी लोगोंके बड़े-बड़े मकानोंपर बलपूर्वक अधिकार जमा लेना चाहते हैं। हम अरब पति हो जायँ तो भी और अधिक कमाकर जमा करते रहना चाहते हैं। देशमें धनकी एक सीमा हैं; यदि अपने बुद्धि-कौशलसे हम अधिक धन एक जगह जमा कर लेंगे तो अन्यत्र कमी होगी ही, हजारों लाखों लोग निर्धन-भूखे हो जायँगे और वे संगठित होकर हमारे बैंकोंमें रखे हुए धनको भी हड़प ले जानेका दुःसाहस करेंगे। आजके धनी लोग अपने व्यवहारोंसे ही कम्यूनिज्मको बुला रहे हैं। वे दूरदर्शितासे काम नहीं ले रहे हैं। कितने ही लोग धनके बलसे पराये घरकी सुन्दरियों, महिला-कालेजोंकी छात्राओं तथा अध्यापिकाओंतकको विवश और वशीभूत करके अपनी पैशाचिक वासनाएँ तृप्त करनेकी कुचेष्टाएँ करते सुने गये हैं। राजा ययातिने एक बार ऐसा ही प्रयोग किया। वे चाहते थे खूब भोग भोग लिया जाय, जिससे भोगोंकी इच्छा ही नहीं रह जाय। परन्तु उनके अनुभवमें यही आया कि 'जैसे घी डालनेपर आगकी ज्वाला बढ़ती है, उसी तरह भोग भोगनेसे भोगेच्छा और तीव्रतर होती जाती है। अतः तृष्णाका त्याग कर देनेमें ही सुख और शान्ति है।' उन्होंने तो इस अनुभवसे लाभ उठाया और विरक्त होकर वे मुक्तिके अधिकारी हो गये; परन्तु हम अपनी भोग-लिप्सा छोड़ना नहीं चाहते हैं। हमने कुछ पैसे एकत्र कर लिये तो हमारे इस मिट्टीके शरीरका भी बहुत मूल्य हो गया। इसकी

सेवाके लिए हमारी-जैसी ही आकृतिवाले दस मनुष्य सेवक रहने चाहिए। उनका भरण-पोषण कोई महत्त्व नहीं रखता। वे सौ रुपये महीनेमें पूरे परिवारकी जीविका चलावें किन्तु हम उनके धर्मात्मा स्वामी सौ दो-सौ रुपये रोज जेब खर्चमें उड़ाते रहेंगे। यह विषमता चलनेवाली नहीं है; विद्रोहकी भावनाएँ उग्रसे उग्रतर होती जा रही हैं। विद्रोही विविध नाम-रूप धारण करके सामने आ रहे हैं और हिंसाको लक्ष्यसिद्धिका साधन बना रहे है। यदि हमारा धन छीन लिया जायगा तो बड़ा भारी दुःख होगा। यदि हम स्वयं देकर उस धनको परोपकार तथा पुण्यकर्ममें लगा दें; तो हमें सन्तोष होगा और हम लोक-परलोक दोनों सुधार लेंगे। धनसंग्रही वर्ग अब भी चेत जाय तो शुभ होगा। आज लाखों पीड़ितोंके बीचमें कुछ बोरे चने बँटवा देनेसे जनता सन्तुष्ट होनेवाली नहीं है। आज वह अपनेमें और दूसरेमें सुख-सुविधाकी दृष्टिसे अधिक अन्तर नहीं रहने देना चाहती है।

दम्भ और पाखण्ड दूर हो

यदि हम समाजसेवी हैं, समाजका उत्थान देखना चाहते हैं तो स्वयं आदर्श बनें; केवल दूसरोंको उपदेश दें और स्वयं समस्त बुराइयोंमें गुप्तरूपसे संलग्न हों तो हमारा कोई भी प्रभाव समाजपर पड़नेवाला नहीं है। सफेदपोश रहना ही सब कुछ नहीं है। सामाजिक समुत्थानके लिए बाहरी स्वच्छता और सफाई भी आवश्यक है; परन्तु आन्तरिक स्वच्छता उससे भी बढ़कर है। यदि हमारे अन्तःकरणमें काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्रोह, असूया आदिकी गन्दगी भरी रहे तो बाहरसे दस बार स्नान करके भी हम शुद्ध नहीं, पूरे पाखण्डी हैं। हम देखते हैं कुछ लोग चन्दन-टीका लगाकर घण्टों पूजा-पाठ करते हैं; परन्तु वे ही ऐसे-ऐसे घृणित पापकर्मोंमें लिप्त पाये जाते हैं; जिनकी उनके द्वारा हो सकनेकी सम्भावना कोई भी नहीं कर सकता था। नया जमाना हो या पुराना, संयम-सदाचारका महत्त्व कभी कम नहीं होगा। सभ्यताके नामपर क्लबोंमें स्वच्छन्द-विहार और मधुपान होते हैं, तो उनका समर्थन कोई भी विचारशील पुरुष नहीं कर सकता। वहांसे जो भ्रष्ट जीवनका संस्कार लाया जाता और पारिवारिकजनोंमें भी फैलाया जाता है; उससे सारे समाजमें सड़न पैदा होगी और कहीं भी किसी मर्यादाकी बाँध टूटे विना नहीं रह सकेगी। यदि हम समाजको बाहर-भीतरसे स्वच्छ देखना चाहते हैं, तो हमें स्वयं उक्त बुराइयोंसे बचना होगा। यदि मन्दिरके पुजारी हैं, भगवान्की उपासना करनेवाले हैं, आस्तिक हैं और संयम-सदाचार तथा आस्तिकताके प्रचारक-प्रसारक हैं तो स्वयं निजी जीवनको भी उसी आदर्शमें ढाले रखना होगा; अन्यथा हमारे ढोंगका कहीं कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि हमने मन्दिरको अपने लिए विलासका प्रच्छन्न स्थल बनाया तो हमसे बड़ा नास्तिक और ईश्वर-द्रोही कौन होगा ? जो उपदेशक हैं, कथावाचक हैं, उन्हे समाजमें, खुले स्थानमें उपदेश देना और कथा श्रवण कराना चाहिए। परन्तु उन्हें कभी एकान्त-सत्संगकी बीमारी नहीं अपनानी चाहिए। प्रायः नवयुवती स्त्रियाँ उपदेशक-महात्माओंके साथ एकान्त सत्संग करने जाती है, उस एकान्त सत्संगके जो दुष्परिणाम प्रकट हुए हैं, वे मस्तकको लज्जासे अवनत कर देनेवाले हैं। एकान्त-सत्संग एक पुरुषका अनेक स्त्रियोंके साथ या एक स्त्रीके साथ भी प्रच्छन्न पाप है।

सत्संगके नामपर एकान्त-वार्तालाप एक महान् भ्रष्टाचार है। इससे अनाचार, अधर्म और नास्तिकताका पोषण होता है। इसे रोका जाना चाहिए। जो साधु, महात्मा अथवा संन्यासी कहलानेवाले लोग दूसरोंको शास्त्रीय धर्मका उपदेश देते हैं, वे अपने लिए उसका पालन क्यों नहीं करते? उन्हें काठकी नारी-प्रतिमाको भी छूनेका अधिकार नहीं है, एक स्थानपर उन्हे अधिक कालतक रहनेका आदेश नहीं है; तो भी वे धनका संग्रह करें, मठ बनावें, मठाधीश एवं गुरु बनकर स्त्रियोंसे चरणसंवाहन करावें तो क्या उन्हें धर्मभ्रष्ट नहीं कहा जायगा। या तो संन्यास लेनेकी प्रथा बन्द हो या उसके शास्त्रीय स्वरूपकी रक्षा की जाय; अन्यथा राजसी ठाट और भोग भोगनेके लिए लिया गया संन्यास ढोंग और पाखण्डके सिवा कुछ नहीं है। कितना ही नामी ग्रामी महात्मा—चाहे गृहस्थ हो या साधु; यदि वह परायी स्त्रियोंके साथ सम्पर्क करता है तो वह भी उतना ही पापाचारी है, जितना दूसरे लोग ऐसा आचरण करनेपर होते हैं। भगवद्भावके नामपर व्यभिचारकी खुली छूट किसीको नहीं मिल सकती है। हम इसी तरहके दम्भ-दुराचारों द्वारा धर्मसंस्थाओंको कलंकित करनेका दुःसाहस कदापि न करें।

●

दानका सद्यःफल

राजा भोजके राजकवि किसी आवश्यक कार्यसे निदाघकी दोपहरीमें पैदल ही निकल पड़े थे। लौटते समय उन्होंने एक दीन-दुर्बल व्यक्तिको लड़खड़ा कर चलते देखा। उसके पैर जल रहे थे, फफोले पड़ गये थे। राजकविने दयासे द्रवित हो अपने जूते उतार कर उसको पहना दिये। इसी समय राजाका हाथीवान हाथी लिये अचानक उधरसे आ निकला और राजकविको उसपर चढ़ा लिया। संयोगसे राजा भोज भी रथपर बैठे मार्गमें मिल गये और हँसीमें पूछ बैठे 'आपको यह हाथी कैसे मिल गया?' कविने उत्तर दिया—'मैंने अपना पुराना जूता दान कर दिया था, उसी पुण्यसे हाथीपर बैठा हूँ। जो धन दान नहीं किया गया, वह व्यर्थ ही है।'

राजाने मुसकरा कर वह हाथी राजकविको दे दिया।

●

ब्रह्मसुख और भगवत्सुखकी स्पृहणीयता

सुखप्राप्ति

श्रीओंकारदत्त शास्त्री

यहाँ हमारा अभिप्राय ऐन्द्रियक-लौकिक सुखसे नहीं है। वह सुख तो जैसा शक्रको वैसा ही शूकरको भी प्राप्त होता है। ऐसे नश्वर सुखको सुख कहना भी ऐसा ही है जैसे खद्योतको तेजस्वी कहना।

> सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च।
> देहिनां यद् यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः॥

ऐसे सुखकी स्पृहा विचारशील नहीं करते हैं।

> 'इषुप्रपातमात्रं हि स्पर्शयोगे रतिः स्मृता।'
> 'ततोऽस्य जायते तीव्रा वेदना तत्क्षयात्पुनः।'
> 'अबुधा नैव वाञ्छन्ति मोक्षं सुखमनुत्तमम्॥'

धनुषसे बाण छूटनेमें क्षणमात्रका ही तो काल लगता है, बस उतने कालका ही यह विषय-जन्य सुख है फिर तो वेदना ही हाथ लगती है। वही परम एवं चरम सुख है जो हमें संसारकी दलदलसे निकालकर परमानन्दमें निमग्न कर सके। इसीसे वेदके सार उपनिषदोंने उसीको लक्ष्य कराते हुए घोषणा की—

> 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।'
> 'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'

जो भूमा, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापक, एकमात्र अद्वितीय सत्य है वह सुखरूप है। अल्पमें-परिच्छिन्नमें, सीमितमें सुख कहाँ मिलेगा। वही रसरूप है। उसे पाकर जीव भी आनन्दित हो जाता है। तो इस प्रकार सुखके तीन विभाग कर लीजिये—१. विषयसुख, २. ब्रह्मसुख एवं ३. भगवत्सुख। इनमें नामरूपात्मक उपाधि-संसृष्ट औपाधिक विषयसुख तो आधि-व्याधिपरीत होनेसे विपरीत ही पड़ता है। अतः वह विचारशील पुरुषोंका आदरणीय उपादेय नहीं है। उसमें भटककर अटकनेवाले जीवकी संकट-परम्परा श्रवणमात्रसे सीत्कार-चीत्कारको

उत्पन्न करनेवाली है। अतः इस ऊपरकी चमक-दमकसे आगे बढ़िये। पतंगकी तरह रंग रोगनको देखकर टूट पड़ना लोलुपता है। धीर होकर भीतर प्रवेश करिये। वैराग्यको अपना सहयोगी बनाइये एवं गुरुप्रदत्त विवेकनेत्र द्वारा इस परिवर्तनशील नाम-रूपात्मक प्रपञ्चको स्वप्नकी तरह दृश्य होनेके कारण मिथ्या समझकर गगनकी नीलिमाके समान बाधित कर दीजिये। नामरूपात्मक प्रपञ्चमें इदन्तास्पद जगत्‌के साथ अहंतास्पद अपने शरीरको मत भूलिये। इसका भी 'नेति-नेति' यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं, क्योंकि यह दृश्य है, इस प्रकार व्यतिरेक-पद्धतिसे बाध कर दीजिये। स्थूल शरीरके साथ मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कारात्मक सूक्ष्म शरीर भी दृश्य होनेसे बाधित हो जायगा एवं अविद्यात्मक कारण शरीर भी। हम अपने अज्ञानको जानते हैं **'सुखमहमस्वाप्सम् न किंचिदवेदिषम्'** मैं खूब सुखसे सोया और मुझे कुछ ज्ञान नहीं था। इस सुषुप्ति-कालिक अनुभवके अनुसार हम अज्ञानके भी साक्षी हैं, अतः कारणशरीरका भी बाध हो जाता है। इस प्रकार जब विचारकी कसौटीसे कसनेपर सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्चका बाध हो जायगा, तब नवनीतके समान निर्मल निषेधकर्ता आत्मा ही शेष रह जायगा। उसका अनुभव होते ही आप सुख-समुद्रमें डूब जायेंगे। डूब क्या जायेंगे, स्वयं सुखरूप हो जायेंगे। वह सुख मन-बुद्धि-वाणीका विषय नहीं है। अनुभवगम्य भी नहीं-अनुभवरूप ही है। पुनः जब गुरुदेवकी कृपासे उस प्रत्यक्‌चैतन्य आत्माकी व्यापकता—ब्रह्म-रूपताका पता चलेगा, तब तो समझमें आयेगा कि—'अरे जिसको मैंने मिथ्या मानकर उसका बाध किया था वह भी मुझसे भिन्न नहीं, मेरा ही स्वरूप है। भला! द्रष्टासे भी कभी दृश्य भिन्न होता है? रज्जुसे सर्पकी सत्ता एवं स्वर्णसे अलङ्कारकी सत्ता पृथक् कैसे सम्भव है? यह तो मुझे समझानेके लिए—अपने स्वरूपकी पहचान करानेके लिए गुरुदेवने व्यतिरेक-पद्धतिके द्वारा उसका विवेक कराया था।' इस प्रकार फिर समन्वयपद्धतिके द्वारा द्वैतमात्रका निर्मूलन कर डालिये। तब आप वस्तुतः अपनेको भूमा अनुभव करने लगेंगे। वही तो एकमात्र सुखरूप है। **'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'** **'द्वितीयाद्वै भयं भवति।'** इस अद्वितीय एवं देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न अपने अखण्ड सत्य स्वरूपमें शोक, मोह, भयादि किसी प्रकारकी बाधा नहीं है। **'द्वैत भावना मनसे छोड़। निर्भय बैठा मूँछ मरोड़॥'** यही निरालम्ब संवित् है—अस्पर्शयोग है। मुमुक्षुजनका उपादेय है। इसकी व्यतिरेक-पद्धतिका अनुशीलन ही आपको दुःखकी दलदलसे निकालकर सुखी बनानेमें समर्थ है!

'यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि॥' (अष्टावक्रगीता)

यदि आप देहको अपनेसे पृथक् समझकर—'जैसे घटका द्रष्टा घटसे भिन्न होता है, ऐसे ही देहका द्रष्टा मैं भी देहसे भिन्न ही हूँ, देह नहीं हूँ' ऐसा जानकर चिन्मात्र अपने स्वरूपमें विश्राम करके रहते हो तो अभी विचारकालमें ही आप सुखी, शान्त एवं संसार-बन्धनसे मुक्त हो जायेंगे।

यदि इसको सुनकर, समझकर भी यह आपके हृदयमें नहीं बैठता है, आपको इसमें नीरसता प्रतीत हो रही है, यदि अकेलापन आपको अखरता है—भयभीत करता है तो—

इस मार्गमें आपकी अरुचि है, अतः आप इसके अधिकारी नहीं। आप सरस हैं— सहृदय हैं— कोमल प्रकृतिके हैं तो फिर आप इधर व्रज-वृन्दावनकी ओर झुकिये। जहाँ साँवरा सलोना सौन्दर्य-माधुर्यका एकमात्र निधान रसरूप **"आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि"**-सुखरूप सगुण ब्रह्म कभी निकुञ्जमें विराजकर अपनी अभिन्न आह्लादिनी सारसर्वस्व श्रीराधापादारविन्दका संवाहन करता है तो कभी गोपीमण्डल मध्यवर्ती होकर उन्हें अपने दिव्यातिदिव्य रासरसका आस्वादन कराता है। कभी सखाओंके साथ वनमें गोचारण करता है तो कभी साँकरीखोरमें सखियोंको रोककर गोरसका दान माँगता है। कभी वंशीवटपर तो कभी गिरिराजके अन्दर शिखरपर त्रिभंगललित खड़ा होकर अपनी अनुपम बाँसुरीमें अपना अलौकिक, ब्रह्मानन्दको भी मन्द करनेवाला रस भरकर बरसा रहा है। वह विश्वमोहनरूप यदि आपके ध्यानमें भी आ जाय, एक बार ही सही, ध्यानमें न सही, स्वप्नमें ही सही तो भी आप सुख-समुद्रमें उन्मज्जन-निमज्जन करने लगेंगे। यहाँ आनेके लिए—उसे पानेके लिए कुछ त्याग-तपकी पूँजी आपके पास है तो भी ठीक, यदि नहीं है तो भी कोई बात नहीं। इतना ही नहीं, आप यदि पापी-तापी, घोर अनाचारग्रस्त हैं, पतित हैं तो भी घबरानेकी, हिचकनेकी, निराश होनेकी, कोई बात नहीं। जैसा प्रसाद पुण्यात्माओंके लिए, वैसा ही नहीं, उससे भी कहीं अधिक सुविधाप्रद द्वार आपके लिए सदा उन्मुक्त है। आप अवश्य आइये। किन्तु एक प्रश्न है—क्या आप उसे चाहते हैं? यदि उसे पानेकी चाह सचमुच आपके हृदयमें जग चुकी है तो आप धन्य हैं। आप कोई भी सम्बन्ध उससे जोड़ लीजिये। चाहे उसे अपना सखा मानिये, चाहे स्वामी या शिशु मानिये, चाहे कान्त। सभी उसे स्वीकार है। वह आपकी लालसाका, चाहका उपहार चाहता है। संसारका बन्धन तो उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने मात्रसे ही कट जाता है। वह स्वयं तो रसरूप मधुरातिमधुर है ही, उसके नाम-रूप-लीला एवं धाम सभी उसके होने मात्रसे रसरूप हैं—परममधुर हैं। यदि रूपका ध्यान लीलाचिन्तन करनेमें आप असमर्थ हैं तो नामका ही आश्रय लीजिये— **नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णत्रयी'** कितने अमृत डालकर इस कृष्ण नामका निर्माण हुआ है, कौन जाने? बड़ा मधुर है, निरन्तर जप करिये। इसीसे सबकाम बन जायेगा। यह भी नहीं बनता तो धाममें निवास करिये। यहाँकी धरा, यहाँका आकाश, वायुमण्डल, यहाँका वारि—वलि—पञ्चतत्त्व' एवं गिरि-कानन-तरु-लता-गुल्म-तृण, खग-मृग, नरनारी सब अलौकिक हैं, उनका मन-ही-मन आदर करिये, प्रणाम करिये, भूलकर भी लौकिक भाव न करिये। यहाँ सब सच्चिदानन्दस्वरूप ही हैं—**'यत्र प्रविष्टः सकलोऽपि जन्तुः स्वानन्दसच्चिद्घनतामुपैति'**। ऐसा भाव दृढ़ होनेपर भी प्रेमका तत्त्व-रसरूप अनजानमें ही आपके हृदयमें प्रविष्ट हो जायेगा। आपके कल्मषजालका निर्मूलन वह स्वयं कर देगा। जैसे कथाश्रवणसे कर्णकुहर द्वारा प्रविष्ट होकर वह हरि हृदयका प्रक्षालन करता है **'प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्। धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्।'** जो ज्ञानी एवं भक्त होकर भगवान्‌के अलौकिक रूपका अनादर अथवा लीलाकी अवहेलना करते हैं। या उनकी आह्लादिनी शक्तिका आश्रय ग्रहण नहीं करते वे अवश्य पतित होते हैं; क्योंकि जीवकी रूपासक्ति जन्मान्तरसे हृदयमें जमी हुई है। वह

अलौकिक रूपकी उपासनाके विना निर्मूल नहीं हो सकती। यही 'भगवत्सुख' है, इसीको भक्तिरस कहते हैं। जिसके सम्वन्धमें शास्त्रका वचन है—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत्परार्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिरसाम्भोधेः परमाणुकलामपि॥

यदि ब्रह्मानन्दको सवसे वड़ी परार्ध-संख्यासे भी गुणित कर दिया जाय तो भी वह भक्तिसागरकी छोटी-से-छोटी परमाणुकलाके वरावर भी नहीं हो सकता।

यद्यपि इस मार्गमें ज्ञानियोंकी तरह रज्जुमें-से सर्प निकालते, अन्वय-व्यतिरेक, अधिष्ठान-अध्यस्तका चिन्तन करके दिमाग गर्म करते एवं घट-पटकी खटपटमें पड़ते हुए जीवन व्यतीत नहीं करना पड़ता। भक्तिमार्ग वहुत सुगम है। साधन एवं फलकालमें भी सरस है। वहाँ रसकी कोई सीमा नहीं—उपमा नहीं। फिर भी जैसे ज्ञानी लोग विशेषकर आधुनिक मिथ्या ज्ञानी प्रपञ्च-मात्रको, पुण्य-पाप, ईश्वर, कर्मफल, को कल्पित एवं मिथ्या मानकर भी भोगासक्तिके कारण भोगको सत्य समझकर उसके लिए लपक रहे हैं, ललचा रहे हैं, अन्धेकी तरह दोनों हाथोंसे संग्रह-परिग्रहको वटोर रहे हैं, कसकर पकड़ रहे हैं, इस प्रकार अनाचार-ग्रस्त होकर पतित एवं लिप्त होनेपर भी अपनी वाक्‌चातुरी-वाग्जालसे अपनेको असङ्ग-निर्लेप ब्रह्म ही वखान रहे हैं। परम पूज्य गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

'परतिय लम्पट कपट सयाने। लोभमोह ममता अधिकाने॥
सोइ अभेदवादी ज्ञानीनर, देखा मैं चरित्र कलियुग कर॥'

इसके साक्षात् उदाहरण वन रहे हैं।

वैसे ही आप भी सावधान रहें। जव आप इस रसमय वस्तुकी लालसा लेकर इधर वढ़ेंगे, इसको अपना लक्ष्य वनावेंगे, इस ओर प्रगति करेंगे तव आपपर भोगोंकी वर्षा होगी। सुविधाएँ आपका स्वागत करेंगी। योगके चमत्कार आपके चरणोंमें नमस्कार करेंगे। आपको परम-धीर महावीरकी तरह इन सवकी उपेक्षा करनी पड़ेगी। जैसे पवनकुमारके सामने जनकनन्दिनीके अन्वेषणके लिए शतयोजन सागरको पार करते समय वीचमें ही मैनाक आया, और वोला—'कृपया कुछ विश्राम करके आगे वढ़िये।' श्रीहनुमान्‌जीने केवल हाथसे छूकर उसे प्रणाम कर लिया और कहा—'**रामकाज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम।**' यह मन ही शत-शत योजनाओंसे भरा शतयोजन सागरके समान है। काञ्चन-भोगके समान मैनाक-पर्वत है। काञ्चनका भोग आराम विश्राम देना चाहता है। योगके रूपमें ही केवल आवश्यक भोग आपको स्वीकार करना है। योगका विरोधी वासनात्मक भोग नहीं। इसके पीछे सुरसा-सुन्दर र.ा देनेवाली कामिनी मार्गमें पड़ती है और कहती है '**आज सुरन मोहि दीन्ह अहारा।**' ठीक ही है, पुरुष कामिनीका आहार-भोग्य ही है—भोक्ता नहीं। और फिर उसने जैसे-जैसे अपना विशाल मायाजाल रूप प्रकट किया, पवनकुमार भी दुगुने विशाल बनकर उसपर विजय नहीं पा सके। ठीक ही है—कामिनीको भोगसे कोई नहीं जीत सकता।

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥'

कामाग्नि भोगरूपी हविकी आहुतिसे कभी बुझ नहीं सकती । उलटी बढ़ेगी, बढ़ती जायगी ।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥

काठके ढेरसे अग्निकी तृप्ति, एवं नदी-समूहसे सागरकी तृप्ति तथा सर्वप्राणियोंके भक्षणसे जैसे कालकी तृप्ति असंभव है, वैसे ही पुरुषोंसे वामस्वभावा वामलोचनाकी तृप्ति भी असंभव है । श्रीमहावीरजीको स्वयं संकुचित होना पड़ा, तब कहीं उस विघ्नसे विजय मिली । भक्तको भी—

'यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।'

कूर्मकी तरह इन्द्रियोंका संकोच करना होगा, तब कहीं वह इस जालसे बच सकता है, अन्यथा नहीं ।

फिर आगे एक और विघ्न अदृश्य राक्षसीके रूपमें आता है । **'निसिचरि एक सिन्धु मुँह रहही । करि माया नभके खग गहही ।'** यह कीर्ति ही मनरूपी शतयोजन सागरमें छिपी हुई राक्षसी है, कीर्ति भी जैसे दीखती तो नहीं, कामिनी-काञ्चनकी तरह प्रकट रूप इसका नहीं है, किन्तु पकड़ती अवश्य है । यह भी साधकको साधनभ्रष्टकर डालती है । अदृश्य शत्रु अधिक भयङ्कर एवं क्षतिप्रद होता है । इसका संहार करके पवनकुमार आगे बढ़े और लंकाकी अधिष्ठात्री लंकिनीको भी ठोकर मारकर भक्त-विभीषणका संग प्राप्त किया । अनन्तर उन्हें श्रीसीताजीका दर्शन मिला और उनका आशीर्वाद प्रसाद लेकर जब भगवान् राघवेन्द्रके पास आये तब भगवान्ने अपनेको उनका ऋणी स्वीकार किया । ऐसे ही भक्त भी कीर्तिको ठुकराकर, लंका रूप भोगकी अधीश्वरी लंकिनी-मायाको भी पराजित करके जब भक्तका संग करता है, तब उसे सीता रूप मूर्तिमती भक्तिका लाभ होता है, जिसके हृदयमें आनेसे भगवान् भी भक्तके भक्त एवं ऋणी बन जाते हैं । तथा कहने लगते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।'

'हे गोपियो । तुम्हारा संयोग निर्दोष है । तुम्हारे सुन्दरकृत्यका मैं ब्रह्माकी भी आयुके समानकाल द्वारा बदला नहीं चुका सकता ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सदाचार ही ज्ञान एवं भक्तिकी निम्न (नींव) है, जो इसकी अवहेलना करके ज्ञान तथा भक्तिका प्रासाद खड़ा करना चाहते हैं, उनका पतन अनिवार्य है । अतः यदि हमें सच्चे ब्रह्मसुख एवं अनन्त अनुपम भगवत्सुख भगवद्रसको पाना है तो सदाचारको दृढ़तासे स्वीकार करना होगा । वैसे भक्ति-पक्षमें प्रभु-प्राप्तिकी चाह ही सब प्रकारके दोषोंको खाकर सारे सद्गुणोंको प्रदान कर देती है; क्योंकि उस 'चाह'में अन्य सांसारिक चाहका मिश्रण ही तो दुराचार, व्यभिचार है—दोष है । यह तो साधकोंको सावधान करनेके लिए इसका स्पष्टीकरण किया गया है । जो अत्यन्त आवश्यक भी है । अपने छोटेसे छिद्रको भी शतशत नेत्रोंसे देखना अप्रमत्तका लक्षण है, जो प्रभुको परम प्रिय है ।

गुण तुम्हार समुझहिं निजदोषा ।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥

शिवरात्रिपर शिवका स्तवन

जय हे औढरदानी !
जैसे तुम उदार परमेश्वर, तैसी सिवा भवानी ॥

× × ×

तुम-घट घटवासी अविनासी व्यापक अन्तरजामी,
सुद्ध सच्चिदानन्द अनामय अमल अकाम अनामी।
अविदित गति अनवद्य अगोचर अगुन अनीह अमानी ॥ १ ॥
अगम अमानि तुमहिं निगमागम 'नेति' नेति' कहि हारे,
सोई तुम भक्तन हितकारन रूप अनेकन धारे।
किये अनुग्रह-भाजन प्रभुने सकल चराचर प्रानी ॥ २ ॥
परखि प्रीति परवत-तनयाको आधे अङ्ग बिठायो,
आधो पुरुष अरध नारीको अद्भुत रूप बनायो।
दम्पतिकी यह एकरूपता तुमसे जगने जानी ॥ ३ ॥
आक धतूर पात तूफलपै तुम रीझत त्रिपुरारी,
चाउर चारि चढ़ाइ पदारथ चारि लहत नर-नारी।
आसुतोस तुम बिन त्रिभुवनमें को अति कृपानिधानी ॥ ४ ॥
जाके पदरजके प्रसाद ते सुर सुरपति सुखभोगी,
सोइ सरबस्व अरपि औरन कों फिरै अकिंचन जोगी।
परहित जाँचत कर कपाल लै डारति भीख भवानी ॥ ५ ॥
तुम बिनु प्रेत-पिसाचन हू कों को मानत निज प्यारे,
बैर बिहाइ मोर अहि मूषक निवसत सदन तिहारे।
वृषभ सिंघ सँग-सँग रहि पीअत एक घाट पै पानी ॥ ६ ॥
विष बिषधर दोषाकर दूषन भूषन कौन बनावै,
कौन आप हालाहल पीकैं औरहिं सुधा पियावै।
तुम बिन काके कण्ठ कृपा की लखियत नील निसानी ॥ ७ ॥
कासी बीच मुक्ति मुक्तामनि कौन लुटावत डोलै,
को पसुपति बिन बँधे पसुनको पास कृपा करि खोलै।
स्रवन सुनाइ कौन तारक मनु तारत अगनित प्रानी ॥ ८ ॥
जेहि मारत जग तेहि अहि गनको प्यार करत तुम स्वामी,
लीजै सरन महेस ! कृपा करि चरन नमामि नमामी।
तुम बिनु को अपनावत मो सम कुटिल अधम अभिमानी ॥ ९ ॥

'राम'

कहानी

एक प्रश्न

श्रीगोपाल मिश्र

दामोदर व्यासको उनके असली नामसे लोग उतना नहीं जानते थे जितना कि 'कॉटन-किंग'के नामसे। कपड़ेकी कई मिलें, कलकत्तेकी कई भव्य अट्टालिकाएँ और मध्यप्रदेशके चार सिनेमा-हाल उन्हींके थे। देश-विदेशके कई बैंक दामोदर व्यासकी पूँजीपर खड़े हुए थे। इन सबके अलावा काला-धन भी उनके पास कुछ कम न था।

व्यापारी-वर्ग 'कॉटन किंग'का लोहा मानता था। उनके हाथोंमें जैसे जादू और मस्तिष्कमें जैसे विश्व-कम्प्यूटर काम करता था। मिनटोंमें शेयर-मार्केटको हिला देनेकी क्षमता थी उनमें।

लेकिन ऐसी भी कुछ बात थी कि दामोदर व्यास स्वयं अपने ही को हिलता हुआ-सा अनुभव करते थे। एक अजीब-सी कमजोरी क्षणमात्रमें आकर उन्हें ढक लेती थी, उनपर छा जाती थी और उन्हें लगता था जैसे वे एकाएक बालूकी ढूहपर जा खड़े हुए हैं, और बालू है कि उनके वजनके नीचे हटता जा रहा है। वे नीचे रिसते चले जा रहे हैं। बालू है कि शायद वही ऊँची कब्र है। कभी भी वह इनको निगल ले और ये दुनियाँके पर्देसे हमेशा-हमेशाके लिए गायब हो जायँ।

एक प्रश्नचिह्न है जो रह-रहकर नये आयामोंमें उनके सामने उभर-उभरकर आता रहता। दामोदर व्यासजी अपने दिमागको शान्त नहीं रखते थे। वे स्वयं इस प्रश्नचिह्नका उत्तर ढूँढ़ नहीं पाते थे। प्रश्नचिह्न था कि काला नाग, फन काढ़कर बैठा हुआ! डस लेनेको तैयार!

व्यापार-वृद्धिका हर चरण उनसे पूछता कि 'क्या तुम्हारी समृद्धि अभी पर्याप्त नहीं?' साफ था कि हर बार ही उनका मन यही उत्तर देता कि नहीं; नहीं, नहीं, नहीं; अभी और, अभी और, अभी और; बस

इन्हीं दोनों स्वीकारोक्तियोंके बीच झूलती उनकी जिन्दगी बढ़ती जा रही थी या कि घटती जा रही थी।

एक बेखबरीका आलम अपने आगोशमें समेटे दामोदर व्यासको खींचे लिये जा रहा था और वे बढ़ते चले जा रहे थे जैसे बीन साँपको, जलका भ्रम मृगको, भोग शक्तिको और जीवन मृत्युको खींचता चला जाता है।

मृत्युके फौलादी पंजेकी क्रूर जकड़ वे बचपनमें ही देख चुके थे, जब कि वे बेसहारा थे। रोगने शरीर जर्जर कर दिया था। भूख प्राण लेनेपर तुल गयी थी। आकस्मिक दुर्घटनाओंने मन-प्राण तहस-नहस कर डालनेके लिए तरतीबसे मोर्चा जमाकर प्रहार करना शुरू कर दिया था।

पर दामोदर व्यासने अकेले ही सबका मुकाबला किया। अपने बाहु-बलसे अपना भविष्य बनाया। भाग्यके सामने वे खुद न टूटे, बल्कि भाग्यको ही तोड़-मरोड़ कर अपने अनुसार बना लिया।

अब तो कोई स्वप्नमें भी न सोच सकता था कि यही दामोदर व्यास कभी फुटपाथकी धूल फाँकते थे। फाकाकशीकी नौबतने मृत्युका द्वार खटखटा दिया था। टिमटिमाता दीप भक्से बुझनेको हो गया था।

आज तो दामोदर व्यास 'काटन किंग' हैं। किंग यानी कि बादशाह। सम्राट्। सम्राट् होना कोई मखौल तो नहीं? पर वे थे। और उनकी हस्ती ऐसी थी कि अपने ही बराबर दो-तीन और को भी बना सकते थे।

उनकी जैसी कोठी कलकत्ता शहरमें अकेली थी। उनकी जैसी कार कलकत्ता शहरमें एक ही थी। उसी तरह उनकी दावतें भी, जो वे समय-समयपर राज्यपाल, राष्ट्रपति एवं मुख्यमन्त्रियोंको दिया करते थे, अपने किस्मकी अकेली हुआ करती थीं।

लोग उनको देखते तो अपने अन्दर एक अजीब बेचैनी महसूस करते। शायद यह बेचैनी जलनकी आगकी वजहसे हुआ करती। एक अनायास सी भावना भर जाती······"कितना सुखी है दामोदर व्यास, 'काटन किंग'···आगे-पीछे कोई नहीं अपना, अरब पति है···मजे ही मजे हैं··· जितना चाहे खर्चे · संसारकी सारी मौज-मस्ती उसके पैर चूमती है··· पैसा है सब है···काश मैं भी उसीकी तरह धनी होता·····'

पर लोग जानते थे कि ऐसा हो नहीं सकता। सभी धनी हो जायँगे तो धनके केन्द्रीकरणका महत्त्व ही क्या रह जायगा? उसकी सीमा गिर न जायगी क्या? दूसरोंपर रोब कैसे डाला जा सकेगा? धनीका मतलब है कि ज्यादासे ज्यादा लोग गरीब हों, तभी उनके बीच पैसेवाला बड़ा माना जायेगा। नहीं तो कैसे?···

धन तो दूसरोंसे ही आता है। शायद शोषण से। और शोषण एक बुरी चीज है। इंसानियतसे महरूम। लेकिन दामोदर सेठका समाज दूसरा था।

उनका मतलब था कि दूसरोंकी बेवकूफीसे फायदा उठाना बुद्धिमानी है। और कोई यूँ ही आकर तो धन फेंक नहीं जाता। दूसरोंसे धन निकालना एक बौद्धिक व्यायाम है। शक्तिशाली जीतता है। यही नहीं, किसीको कोई रोकता थोड़े ही है? संसार-क्षेत्र खुला हुआ है। खुली स्पर्धा है। कोई भी कमर कसकर मैदानमें उतर पड़ सकता है। फिर वह उसकी हिम्मत, उसका दिमाग, उसका श्रम है। बन सके तो वह भी धनी बन ले। किन्तु यदि वह धनी नहीं बन सकता तो कोई कारण नहीं कि जो बन सकता है वह भी बनना छोड़ दे……।

इसीलिए दामोदर व्यासने व्यर्थके पचड़ोंमें न पड़कर धन बटोरना शुरू कर दिया था। और फिर एकबार जो शुरू किया तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। बस आगे ही आगे और भी आगे, सबसे आगे बढ़ते चले गये।

लेकिन वे जानते थे कि अभी उनके भी आगे काफी लोग हैं, टाटा, बिड़ला, डालमियाँ…और और भी लोग।

मगर जिन्दगी थी कि थक चली थी। उनके व्यक्तित्वका लौह कुछ पिघलता-सा लगने लगा। सूरज अपनी ऊँचाईसे अब ढलानपर बढ़ता-सा लग रहा था।

आखिर कबतक? कबतक यह ढलती हुई रोशनी उजाला दे सकेगी? शाम ढल जायगी तो रातका क्या होगा?

अपनी अकेली जिन्दगी उन्हें फाड़ खानेको दौड़ पड़ती। वे साफ देख रहे थे कि इतनी बड़ी सम्पत्ति स्वयं उन्हींपर बोझ बनती जा रही थी। कहीं इसी बोझके नीचे दम न घुट जाय। कोई गैर तो था नहीं। न आगे, न पीछे।

'अगर मेरा दम निकल जाय तो?…तो क्या होगा?…तो कौन इसका वारिस बनेगा?…तो क्या यह सब हो जायगा?…सारे जीवनकी गाढे पसीनेकी कमाई यूँ ही इधर-उधर हो जायगी?…क्या सरकार जब्त कर लेगी?…अगर जब्त ही हो जाता है तो इतना काला धन नाहक ही तो पैदा किया……'

ढलती उमरमें ऐसे विचार आकर उन्हें परेशान किया करते। पर किसी भी क्षण ज्यों ही कोई व्यवसायकी बात उठती तो वे यह सब कुछ भूल जाते। उस समय तो वह पक्के व्यापारी ही होते; दूसरोंकी बेवकूफीसे फायदा उठानेवाले।……

लेकिन समयने उन्हें पछाड़ ही दिया। शक्ति घट चली थी पैर आगे बढ़नेसे रुकने लगे। डर था, जबर्दस्ती बढ़ेंगे तो लड़खड़ाकर गिर पड़ें।

वर्षों बाद बीमारीने उन्हें धर दबोचा।

दामोदर व्यासने सोचा, 'डरनेकी क्या बात? बीमारी तो अशक्तपर अड्डा-जमाकर बैठती है। मेरे पास तो शक्ति है। शक्ति, यानी कि पैसा। चाहूँ तो विश्वके डाक्टरोंको लगा दूँ।…'

इलाज शुरू हो गया।

डाक्टरोंने बताया, इलाजसे परहेज जरूरी है।

डायबिटीज़ था, चीनी, चावल, आलू इत्यादि बन्द। ब्लड प्रेशर था, सूखे मेवे और पौष्टिक पदार्थ बन्द। चर्बी घटानेके लिए कम और हल्का अहार जैसे कि उबाला हुआ साग और रोटीके फुल्के, बस। घीसे तो हर तरहका नुकसान था। इसी बीच हल्का हार्ट अटैक, अब तो सारा खान-पान घटकर फलोंके रस और सूप पर आकर सीमित हो गया।

दिन बीतते गये। कुछ आराम तो आया पर रोग जड़ पकड़ता गया।

एक दिन कुछ निराशसे होकर दामोदर व्यासने कहा, 'डाक्टर, अगर आप लोग इलाजमें अपनेको असफल पा रहे हों तो किसी अच्छे विदेशी डाक्टरको बुलाकर दिखा दूँ…'

स्पष्ट था कि डाक्टरोंने बुरा माना। उन्हें मरीजकी बुद्धि पर तरस आया कि कैसी मानसिक दासतासे त्रस्त है यह व्यक्ति। विदेशोंमें भारतीय डाक्टर मशहूर हैं और एक यह हैं कि…'

मगर मरीजके दिलको शाक न पहुँचे, इसलिए डाक्टरोंने बात बदल दी। डा० देशपाण्डे बोले, 'बात यह है सेठजी कि आपको थोड़ा आबहवा बदल देनी चाहिए…'

'ठीक है, अभी, तुरन्त।…मगर आपने अबतक क्यों नहीं बताया?… कहाँ ठीक रहेगा?…आस्ट्रेलिया? वियना? इङ्गलैंड? अमरीका?… आपलोग तुरन्त फैसला कर लीजिये और अभी प्लेन चार्टर करके हम लोग चले चलते हैं…'

डा० देशपाण्डेने हँसकर कहा, 'व्यास साहब, आपके लिए आपके ही देशमें इन सब जगहोंसे अच्छी जगह है?'

दामोदर व्यासका मुँह लटक गया। बोले, 'कहाँ?'

'ऋषीकेश।'

बुझे मनसे दामोदर व्यासने हुँकारी भर दी।

उसी रात स्पेशल प्लेन चार्टर करके दामोदर व्यास अपने नौकर चाकर और डाक्टरोंके साथ ऋषीकेश पहुँच गये।

और तबसे अबतक वहीं है।

बीमारी लम्बी खिंच गयी। डाक्टरोंने चारपाईसे हिलना डुलना मना कर दिया है। बस केवल वे हैं और सूप और इन्जेक्शन-टैबलेट पर लटकी उनकी जिन्दगी।

खिड़कीसे बाहर दुनिया है। देखते रहते हैं। उन्हें वह मस्त संन्यासी बहुत पसन्द आता है जो वृद्ध है फिर भी कसरत करता है। सम्पत्ति-रहित है, फिर भी खुश है। खाना तो ऐसे चावसे खाता है, जैसे छोटे बच्चे। उसकी उन्मुक्त हँसीका ठहाका होटलकी दीवारोंसे टकरा-टकरा कर मखौल उड़ाता रहता है। सबेरेकी प्रभाती और रात्रिका बिहाग कितनी मस्तीसे गाता है यह संन्यासी—और कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ। सचमुच वह होगा, क्योंकि उसे किसीकी दरकार नहीं, बल्कि उल्टे दुनियाँ उसको घेरे रहती है।

दामोदर व्यास उसे ललचाई नजरोंसे टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं। सोचते रहते हैं, 'वह तो ब्रह्म है··और मैं ?··मरीज··जिसके लिए मैंने जीवन भर श्रम किया, उसीने मुझे खा डाला··क्या मैं भी उसीकी तरह बन सकता हूँ ?··क्या अब भी समय है ?··क्या यह सम्भव हो सकेगा ?······'

●

परोपकार

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
चरन्ति सस्यं न च वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीती हैं, वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते हैं; बादल जिस खेतीको सींचते हैं, उसका अनाज वे नहीं खाते हैं; सत्पुरुषोंको विभूतियाँ (सम्पदाएँ) परोपकारके लिए ही होती हैं।

●

कर्तव्यका पालन ही धर्म है

धर्म क्या है

आचार्य श्रीरामस्वरूप मिश्र

★

यह सृष्टि केवल धर्म पर चल रही है। जैसे जलका आधार किसी प्रकारका पात्र होता है, इसी प्रकार सृष्टिका आधार धर्म है। धर्मका अर्थ है, "धरति लोकानिति धर्मः" अर्थात् जो लोकोंको धारण करे, उसे धर्म कहा गया है। आजकल शिक्षित लोग धर्मसे चौंकते हैं, बहुतसे व्यक्ति धर्मको तो आडम्बर मानकर अवनतिके मार्गमें ढकेलने वाली वस्तु मात्र कह बैठे हैं। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि धर्मका लक्षण महर्षि कणादने बताया है कि आत्माको उन्नत बनानेवाले आचरण, जो क्रमशः चरम उन्नति तक ले जायें, उन्हें धर्म कहा जाता है। यद्यपि धर्मका स्वरूप सदा देश, काल, पात्रके अनुसार ही सापेक्ष है। एक समय एकके लिए जो धर्म है, भिन्न अवसरमें या भिन्न अधिकारियोंके लिए वही अधर्म हो जाता है। कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि आध्यात्मवादके अनुयायियोंने धर्मके आगे अर्थ और कामको गिरा दिया है। वे केवल धर्मको ही महत्त्व देनेके कारण देशकी अनेक प्रकारकी उन्नतिमें बाधक सिद्ध हुए हैं। किन्तु किसी भी भारतीय शास्त्रमें अन्य कर्मोंसे विमुख होनेका विधान नहीं मिलेगा। धर्मकी परिभाषा चाहे अलग-अलग तरहसे क्यों न हो, किन्तु सबका लक्ष्य एक ही है और उसे प्राप्त करनेके लिए साधन भिन्न हो सकते हैं। लक्ष्य है अपनी आत्मा और मानवताका कल्याण और साधन हैं सत्य अहिंसा अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि वे सद्गुण जो समाज और राष्ट्रको उन्नत बनानेमें सहायक होते हैं। संसारका कोई भी धर्म यह नहीं कहता है कि झूठ बोलो, हिंसा करो, चोरी करो, आचरणहीन बनों और येन केन प्रकारेण धन एकत्रित करो। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि सहिष्णुता और सद्भावसे काम लिया जाय तो सभी धर्म पडोसियोंकी तरह व्यक्ति और समाजको आदर्शकी ओर अग्रसर कर सकते हैं। यद्यपि विज्ञानके युगमें धर्मका वाह्य रूप पीछे पड़ गया है। आज किसीको फुर्सत नहीं कि धार्मिक आचार-विचार एवं पूजन आराधनको नियमानुसार निरन्तर निभा पाये। फिर भी धर्मप्राण भारतमें मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा और गिरजाघरमें घण्टे सुनायी देते हैं।

भारत ही ऐसा देश है जहाँ धर्मका रूप ऐसा रहा है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्मका पालन करे उसका दूसरे धर्मावलम्बियोंसे कोई वैर-विरोध नहीं होता है। इतिहास साक्षी है कि एक ही परिवारमें भिन्न-भिन्न धर्मावलम्वी रहे, पर उनके आपसी सम्बन्धोंमें कभी कोई व्यतिक्रम

नहीं हुआ। भौतिकवाद और विज्ञानकी संहारक गति-विधियाँ सभी धर्मोंके लिए आज सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं। विभिन्न देश अपनी प्रादेशिक अखण्डता और विचार-धाराका हल शस्त्रों द्वारा खोजते हैं, शास्त्रोंमें नहीं; किन्तु हिंसा और युद्धके द्वारा समस्याका हल नहीं निकल सकता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ माने गये हैं। यद्यपि शास्त्रोंमें धर्मको सभी पुरुषार्थोंमें प्रधानता दी गयी है, किन्तु अर्थ, काम, और मोक्षको भी समान स्तरपर रखा गया है। भारतमें धर्मकी उन्नतिके साथ ही अर्थ और कामकी भी उन्नति समानरूपसे ही हुई—धर्म-शास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, व्यवहार-शास्त्र और कला-शास्त्र ये सब हमारे देशमें पूर्णतया उन्नत थे, इसकी पुष्टि हमारी संस्कृतिका इतिहास स्वयं करता रहा है। धर्मका आत्मासे सीधा सम्बन्ध है। जब कभी भी व्यवहारमें धर्मके साथ अर्थ-कामका संघर्ष उपस्थित हुआ और प्रश्न खड़ा हुआ कि या तो धर्मको अपनाओ या अर्थको। ऐसी स्थितिमें हमारी आत्मा सदा धर्मको ही अपनाती रही है और यही उपदेश ऋषियों तथा वेदोंका है। धर्मका ही दूसरा नाम कर्तव्य है, कर्त्तव्य और धर्ममें भेद नहीं है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकने गीता-रहस्यमें यह बताया है कि धर्म, अधर्म, या कर्तव्य, अकर्तव्यका निर्णय भौतिक दृष्टिसे कदापि सम्भव नहीं हो सकता है। इसका सही निर्णय तो आध्यात्मिक दृष्टिसे ही विचार करनेपर हो सकेगा। जब हम देखेंगे कि अमुक कार्यके करनेमें मनुष्यका क्या उद्देश्य है, और इसका क्या परिणाम है? यदि उद्देश्य और परिणाम बुरा है तो अच्छा कार्य भी अधर्म ही होगा तथा उद्देश्य और परिणाम अनुचित न रहनेसे बुरे कार्य भी अच्छे माने जायँगे। अर्जुनको अपने बन्धुओंके साथ युद्ध करनेके प्रति मोह उत्पन्न हुआ तो योगीश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनसे यही उपदेश दिया कि 'हे अर्जुन ? ब्रह्माण्डभरके मनुष्योंके लौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्तिके लिए धर्मके पालन करनेकी आवश्यकता है। अतः इस समय तुम्हारा सच्चा धर्म क्या है? यह जान लो। हे भारत। जब-जब धर्मकी हानि होती है, विश्वास रहित हो जानेके कारण मनुष्य धर्मसे विमुख हो जाता है, श्रुति, स्मृतियोंके वचनोंसे मुह मोड लेता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, आर्जव, दया, मिताहार, शौच, तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्तवाक्यश्रवण, जप, हवन, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये धर्मके २६ अंग जब नष्ट होने लगते है, अधर्ममार्ग पर चलनेवाले पापियोंके नाशके लिए और धर्मकी स्थापना करनेके लिए मैं स्वयं बार-बार सत्य, त्रेता, द्वापर, और कलियुगोंमें अवतार लेता रहता हूँ। धर्मकी ही संस्थापनासे सृष्टिकी स्थिति बनी रहती है और धर्मके ह्राससे ही ब्रह्माण्डमें प्रलयका भय हो जाता है।' इस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको धर्मके सम्बन्धमें अनेकों उदाहरणों द्वारा समझाया है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है। मानवका कर्तव्य ही धर्म है। इसमें किसीको किसी प्रकारका मतभेद नहीं होना चाहिए। मानवकी ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों द्वारा किये जारहे कार्योंका नाम ही तो धर्म है और जब वे अपना स्वधर्म त्याग देती हैं तब प्राणीका स्वरूप हमें भिन्न अवस्थामें दिखायी देने लगता है।

●

अश्वमेधीय अश्वकी रक्षाके अवसरपर
दो भक्त वीरोंके युद्धकी झाँकी

सुधन्वा और अर्जुन का समर

श्रीशिवनाथसिंह सरोज

★

बढ़ता हुआ बाज-सा बेसुध पकड़ रहा जो पथ है;
किस अल्हड़ युवराज रथीका चला जारहा रथ है।
बोलो, कौन उमङ्गें अपनी अङ्गारोंपर पाले;
अमृत अधरोंको विषधरके दाँतों-तले बिठाले।
युग-मंथनका जहर मधुभरे अधरोंसे पीता है;
कौन युवक जीवन जोखिम पर धर करके जीता है।
नथने फूल रहे हैं, लगता है तूफान पिये हैं;
लाल भालपर सिकुड़न, लोचन अरुण बिहान लिये हैं।
पुट्ठे भरे, बैल-से कन्धे, बाहें टेके रथपर—
खड़ा अडिग युवराज रथी है अश्व अनलके पथपर।
कभी-कभी मुस्कान अधरपर तिरती दिख जाती है,
और नजर तब इधर-उधर कुछ फिरती दिख जाती है।
पारावार धूलि धारामें हय-गज-रथ, जलचर थे,
और युवक युवराज रथी था, सब उसके अनुचर थे।
सहसा रुका निरत रथ, पथका अथ उलटा, इति आयी,
और सामने ही अर्जुनकी अरुण ध्वजा फहरायी।
धन्वाको टङ्कार सुधन्वा बोला—'पार्थ अकेले',
आश्चर्य ! सारथी कहाँ है, जो सङ्गरको झेले।
अर्जुन ! उत्तेजित होना मत, धड़ है, साथ नहीं है;
क्योंकि तुम्हें लड़ना सिखलानेवाला माथ नहीं है।
कुरुक्षेत्र यह नहीं लाड़ले ! चंपावती नगर है;
नहीं सुयोधन यहाँ सुधन्वाका सम्मुख संगर है।

अपना वाण चढ़ाकर धनुपर हँसकर अर्जुन बोले—
'बच्चे, तू दुधमुंहे अधरमें अपने जहर न घोले।
महाभारती योद्धाओंका निरखा नहीं समर है;
परखा नहीं तीरमें उनके तेजी है, तेवर है।'
हिली धनुर्ज्या, रण-प्रांगणमें दौड़ गया सन्नाटा,
और सुधन्वाने अर्जुनका तीर-तीरसे काटा।
खाली गया वार, अर्जुनने फिर तूणीर टटोला—
अपना धनुष तान कानोंतक इधर सुधन्वा बोला।
'कहाँ कृष्ण हैं पार्थ, अकेली अकल बनी अविनीता;
पीछेको हथियार उठाना, सुन लो पहले गीता।'
व्यङ्ग्य सुधन्वाका धन्वापर चढ़करके गुर्राया;
रण-केतन सारथी सहित गिरकर धरतीपर आया।
'अर्जुन, अब तो कहो कृष्णसे, स्वयं समरमें आयें;
विश्व-विजयका डङ्का अपना आकर यहाँ बजायें।'
और सुधन्वाके माथेपर थी अचरजकी रेखा,
कृष्ण स्वयं अर्जुनके रथको हाँक रहे थे, देखा।
'उतरे तुम भगवान्, समरमें, अमर हो गयी नगरी;
फूको शङ्ख, समायी जिसमें मुरलीकी स्वर-लहरी।
समर-भूमिकी पूजा प्रभुवर, रूधिर-धारमें लय है;
हँसता जब संहार समझता है संसार विजय है।
श्रद्धाका सद्भाव किसीमें स्नेह-भाव शीतल है;
कोई भक्त तुम्हारा करता जप-तप-व्रत निर्जल है।
मैं हूँ, किन्तु लाड़ला मुझको अपनी बलिका बल है;
अन्तरमें आवेश और आँखोंमें भरा अनल है।
समरस्थलमें पूर्णाहुति लो अश्वमेध अभिमत की;
भक्त और भगवान् करें रचना नूतन भारत की।'
कहकर बाण सुधन्वाने अपना अर्जुनपर छोड़ा,
किन्तु कृष्णके रण-कौशलने उसकी गतिको मोड़ा।
बोले कृष्ण—'पार्थ, इस रणमें मिलता मुझे न रस है;
सखा-भक्तके बीच समर है, कैसा असमंजस है।
स्वत्व-समरका सहचर था मैं कुरुकुल दलन सरल था;
सम्भव था उतार उसका, जो उमड़ा दम्भ-गरल था।
लगता है अर्जुन, इस रणमें मनका पाप मिला है;
अश्वमेधमें अहंकारका भी संताप मिला है।

जिस अखण्ड भारतकी रचना करने तुम निकले थे,
धर्मराजके सदुद्देश्यके उसमें दीप जले थे।
किन्तु भीमकी गदा और गाण्डीव तुम्हारा रोड़ा—
बना, और बच्चेने पकड़ा अश्वमेधका घोड़ा।
कुछ भी हो मुझको रथवानी करनी है अर्जुनकी,
हँसे कृष्ण, बोले—'कर लो तुम कुछ भी अपनी धुन की।
लो मेरा तप-तेज, दूसरा तीर वीरपर छोड़ो;
अर्जुन, अश्वमेधके घोड़ेका दृढ़ बन्धन तोड़ो।'
एक चमक भगवान् कृष्णकी अर्जुनके शरपर थी,
और दूसरी आभा प्रतिद्वन्दीके पास प्रखर थी।
एक डोरमें बँधे नाचते दो-दो कठपुतले थे;
एक अदृश्य हाथसे दोनों ओर तीर निकले थे।
महाभारती मँजी भुजा थी, कृष्ण स्वयं सहचर थे;
डोरी थी गाण्डीव धनुषकी, कई भार सरपर थे।
बाण सुधन्वाके मस्तकको ले उड़ गया गगनमें;
लड़ता रहा किन्तु धड़-धारण धनुष-बाण कर रणमें।
अर्जुन स्तब्ध, कहा मधुसूदनने—'शरीर नश्वर है;
स्मरण करो, फिर पार्थ, आत्मा अविजित और अमर है।
रक्त-भरा निष्कंटक शासन अहंकारका मल है,
आत्मसमर्पण करो, नहीं तो अश्वमेध असफल है।'
अर्जुन झुके, सुधन्वाकी तब वीर-आत्मा बोली—
'भूलो पार्थ, लड़ाई पिछली, जो होनी थी, हो ली।'
'पर मेरे सिरके सौदेसे जो अधिकार मिला है,
हिमगिरिके मस्तकपर शासनका जो भार मिला है,
वह दलितोंकी दीप-शिखा हो पार्थ, न स्वार्थ-अनल हो,
मेरी बलि अखण्ड भारतके व्यक्ति-व्यक्तिका बल हो।'

●

दया

प्राणिमात्रके दुःखसे दुखी होकर उनको दुःखसे छुड़ानेकी जो अन्तःप्रेरणा है; उसीका नाम दया है।

●

शुभ काम दिखावेके लिए न करें

श्री अगरचन्द नाहटा

प्राचीनकालकी अपेक्षा वर्तमानमें शुभ कार्योकी प्रवृत्ति वैसे ही कम होती जा रही है। फिर जो थोड़ी भी शुभ प्रवृत्तियाँ होती हैं उनमें भी एक बड़ी खरावी घुस गयी है—दिखावे की। मनुष्य काम थोड़ा करता है पर दिखावा अधिक करता है, जिससे लोग उसकी प्रशंसा करें। हृदयकी प्रेरणा वहाँ काम करती हुई नजर नहीं आती है, इससे उसके फलमें कमी होना स्वाभाविक है। जीवन दिनों-दिन नकली सा बना जा रहा है, अन्दर कुछ है तो बाहर बोलना एवं आचरण करना उससे भिन्न प्रकारका है। भावनाशून्य धर्माचरणका फल हो भी क्या सकता है? पर आजकल धर्माचरण प्रायः दिखावेके लिए ही किया जाता है, अतः वास्तवमें वह धर्माचरण न होकर ढोंग या मायाचार-सा हो जाता है।

धर्म ऋजुता अर्थात् सरलतामें है। मन, वचन, कायाकी एकताके साथ जो कुछ भी किया जाता है उसका फल बहुत अच्छा मिलता है। पर जब बिना परिश्रम किए ही बाहरी दिखावेसे 'वाह-वाह' मिल जाती हैं, तब दुर्बल मनुष्यका उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। बाहरमें अच्छा लगे या लोग उसे अच्छा कहें, इसी उद्देश्यसे जो शुभ प्रवृत्तिकी जाती है उसका फल तो उतना ही मिलेगा न कि लोग उसकी प्रशंसा कर दें ओर उसे अच्छा समझने लग जांय। आत्मकल्याण, उस प्रवृत्तिसे कुछ भी नहीं हो सकता। अपितु ढोंग या मायाचारके कारण आध्यात्मिक पतन ही होता है। जिन प्रवृत्तियोंसे महान् लाभ मिलनेका शास्त्रोंमें उल्लेख है, उन प्रवृत्तियोंको करते हुए भी हमें उसका इच्छित परिणाम क्यों नहीं मिलता? इसपर यदि विचार करें तो हमें स्पष्टरूपसे अपनी कमी नजर आयेगी। फल तो भावनाके अनुसार ही मिलता है। दिखावेके लिए की जानेवाली क्रियाओंका फल शास्त्रोंमें वर्णित महान् लाभ कैसे मिल सकता है? बाह्य आडम्बरोंसे आन्तरिक शुद्धि हो ही नहीं सकती।

गीताका कर्मयोग तो यह शिक्षा देता है कि जबतक शरीर आदिसे जबतक सम्बन्ध है, तबतक कुछ-न-कुछ प्रवृत्तियाँ तो करनी ही पड़ेगी, पर इसमें कर्तृत्वका अभिमान एवं फलकी आसक्ति न रखी जाय। पर हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति फलकी कामनासे ही होती है। काम थोड़ा-सा हो और लाभ अधिक मिले, यही सभीकी इच्छा रहती है। नाम और यशकी कामना तो वर्तमानमें बहुत ही बढ़ गयी है। दानको ही लीजिए जहाँ मनुष्यका थोड़ा-सा नाम और यश होता हो। उसके लिए तो लम्बी रकम देनेमें भी मनुष्य संकोच नहीं करता। पर ऐसे किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके

लिए चन्दा मिलना कठिन हो गया है, जिसमें व्यक्तिका नाम या यश न होता हो, गुप्तदान आज कितने लोग करते हैं ? यह हमसे छिपा नहीं है। जो कोई भी गुप्तदान करते हैं वे भी बहुत बार तो मन ही मन कीर्तिकी कामना करते हुए नजर आते हैं। करुणावृत्ति उदारता एवं अन्तःप्रेरणा पूर्वक थोड़ा भी किया हुआ दान महान् लाभका कारण होता है; पर आजका अधिकांश दान कार्यकी महत्तापर विचार न करते हुए दूसरोंके दबावसे या दिखावेके लिए ही किया जाता है।

हमारे साधारण व्यवहारमें भी हमे दिखावे या नकलीपनका बहुत अधिक प्रभाव दिखायी देता है। आत्मीयताका गहरा प्रेम-सम्बन्ध जैसा पुराने व्यक्तियोंमें देखनेको मिलता था, आज स्वप्न-सा हो गया है। दो व्यक्ति मिलते हैं तो शिष्टाचारके नाते एक दूसरेसे नमस्कार आदिका व्यवहार कर लेते हैं। मित्रता एवं प्रेमकी लम्बी-चौड़ी बातें की जाती हैं। पर वे हैं—केवल दिखावे मात्रकी, अन्तरात्माको टटोलिए तो यही मालूम होगा। जिन व्यक्तियोंके पास कुछ पूँजी नहीं है, वे भी बाहरी टिप-टाप द्वारा अपनेको धनवान् दिखानेका प्रयत्न करते हैं। कपड़ोंकी सफाई बहुत अधिक दिखायी देती है, पर मनमें मैल भरा पड़ा है। बातोंमें शूरवीरता है, पर हृदयमें कायरता है। लम्बे तिलक हाथमें माला और मुखमें राम-नाम जपते हुए अपने लिए भक्त या धर्मात्मा होनेका दिखावा किया जाता है; पर हृदयमें भक्ति और धर्म नहीं होता। इसीलिए तो आजकल लोगोंकी, देव-गुरु-भक्ति एवं धर्मके प्रति श्रद्धा कम होती चली जा रही है।

आत्मोत्थानके लिए सबसे पहली और जरूरी बात यह है कि कपटरूप कालुष्यको दूर किया जाय। सरलता और सादगीको अपनाया जाय। अपने दोषोंको छिपानेका प्रयत्न न हो और अपने गुणोंका प्रदर्शन नहीं किया जाय। हम जिस स्थितिमें हैं, तदनुसार हमारा बाहर और भीतर एक-सा हो। केवल दिखावेके लिए कुछ न करें। जो कुछ भी करें, सब अन्तःप्रेरणासे किया जाय। आज हमारे जीवन में जो नकलीपन बढ़ रहा है। उसे रोका जाय। हम जो भी काम करें, वह हृदय या आत्म-प्रेरणासे ही करें, दिखावेके लिए नहीं। दिखावापन तो धोखेकी टट्टी है, भोले-भाले लोग उसके चक्करमें फँस जाते हैं। जैसा वेश्याका प्रेम बनावट या दिखाऊ होता है, अन्तरमें वह किसी व्यक्तिसे प्रेम नहीं करती। उसका प्रेम केवल पैसे या धनसे होता है। वैसे ही लोग धार्मिक एवं व्यावहारिक वृत्तियाँ दूसरोंको ठगने या अच्छी, लगनेके लिए करते हैं, इससे चित्तकी शुद्धि नहीं होती, अपितु चित्त दूषित और मलिन होता है, फलतः इसका परिणाम भी अच्छा नहीं हो सकता। व्यवहारमें शिष्टाचारका पालन करना पड़ता है, यह अलग बात है, पर पारमार्थिक कामोंको केवल दिखानेके लिए ही नहीं करना चाहिए।

हम प्राचीन कालके लोगोंको देखते हैं, वे कितने बड़े-बड़े काम कर गये हैं। उन्होंने अपना नाम तक भी प्रकट नहीं किया तब प्रशंसा आदि तो बहुत दूरकी बात है। बड़े-बड़े

ग्रन्थकार हुए, पर वे किसी ग्रन्थमें अपनी प्रशंसा या परिचयके लिए दो शब्द तक भी न लिख सके।

जो काम करता है, उसका नाम स्वयं जाता है और नाम यदि न भी हो तो भी उसे तो आत्म-सन्तोष होता है और यही सबसे बड़ा नाम है। नाम तो यहाँ बड़ों-बड़ोका भी स्थिर नहीं रहा तो आपका-हमारा क्या रहने वाला है? लम्बा काल बीतनेपर नाम भुला दिया जाता है काम ही रह जाता है। प्रदर्शन प्रवृत्तिका लाभ बहुत ही साधारण एवं अस्थायी है। बाहरी टीम-टामसे सच्चाई छिप नहीं सकती। दूसरोंको धोखा देना अपनेको ही धोखा देना है। कपट-क्रिया महान् अनर्थकारी है।

अपने दोषोंको छिपानेसे दोषोंको बढ़ावा मिलता है और अपने गुणोंकी प्रशंसासे अभिमान पनपता है। इसीलिए दिखावेकी प्रवृत्ति तो दूषित है ही, ध्यान रखकर इससे सदा बचते रहिये।

●

दयालुता

श्रीदुर्गाचरण नाग महाशय बड़े दयालु और जनसेवी थे, एक दिन गाँवमें उनके घरका छप्पर छाया जा रहा था। दोपहरका समय था। मजदूर ऊपर काम कर रहे थे। नाग महाशयसे मजदूरोंका धूपमें जलना देखा नहीं गया। वे फौरन छाता तान कर उनके पास जा खड़े हुए। मजदूरोंके मना करनेपर भी वे माने नहीं; दयाकी धारा जो उमड़ पड़ी थी।

●

सबहिं नचावत राम गुसाईं

कठपुतलीका नाच

श्रीमहावीर प्रसाद हलवाई

बड़ी अनोखी-सी बात लगती है, कहते हैं कठपुतली नाच रही है। निर्जीव प्राणी कैसे थिरकन, हरकत, सिहरन कर सकते हैं और कहें कि कोई नचा रहा है तो फिर कठपुलती और उसके नचानेवालेमें फर्क ही क्या, 'सबहिं नचावत राम गोसाइं।'

उस दिन बड़ा सुन्दर मञ्च सजा हुआ था। उन कलाकारोंने एक-एक करके कठ पुतलियाँ उतारनी नचानी प्रारम्भ कीं।

देखिये, उस्ताद हाफिज अली खाँ सरोद बजा रहे हैं और गुदही महाराज इनकी तबले-पर संगत कर रहे हैं। करीमन जान नाच रही हैं। शायद सही कलाकार जब ऐसा करते हैं-तो इतने मस्त हाव-भाव नहीं प्रदर्शित कर सकते; क्योंकि उन्हें हाव-भावोंसे लगाव नहीं है, उनकी साधना संगीत और स्वर चाहती है। एक दूसरेके पास आ-आकर जुगलबंदीका दृश्य सामने उपस्थित करते हैं। कोई कह नहीं सकता कि ये साजिन्दे नहीं हैं, दर्शक साधुवाद देते हैं। विभोर हो जाते हैं। तालियाँ बजती हैं। क्यों? शायद इसलिए कि नाचने-नचानेवाले सभी अमुक मनोभावोंकी अवतारणा हेतु मय दर्शकोंके कठपुतली हैं।

लोग हैरान हैं, सर्कसके शेर, बकरी इतनी हरकत रिंग-मास्टरके इशारे पर नहीं कर सकते जितने ये कठपुतली शेर, बकरी कठमुल्ला मास्टरके इशारेपर कर रहे हैं। वही गुर्राहट है, उसी तरह टेबुलपर उतरते चढ़ते हैं। पंजेसे खुजान करते हैं, एक दूसरेके पास आते-जाते हैं, बकरी उसी तरह मिमियाँ रही है। फिर तालियोंकी गड़गड़ाहट, बच्चोंकी हँसी—थपथपाहट, क्यों? शायद उन बेजानोंमें जान आ गयी थी, उनकी हरकत स्तब्ध काष्ठवत्।

'कठपुतलीका तमाशा करालो तमाशा करालो।' वह एक छोटी कठपुतली दबाये फिर रहा था। न उसके पास मञ्च था न साज बाज—वह बच्चोंसे दस-दस पाँच-पाँच पैसेका सिक्का चाहता था। बालक उसे ही देखना चाहते थे। मास्टरजीकी स्कूलकी क्लास दिखा रहा था। बच्चे इकट्ठे हो गये। दो तीन रुपयेके पैसे बटोर कर ले देकर वह चला गया; क्योंकि उसे भी पेटकी कठपुतली नचा रही थी।

कुछ इसी प्रकारके मानसिक झंझावातमें जब चिन्तन प्रवाहशील होता है तो ऐसा आभास होता है कि निर्विकारकी कोई अदृष्ट, अचिन्त्य स्फुरणा, अतिस्तवन तुरीय दृष्टि ऐसी है, जो यह चाहती है कि सबका केन्द्रबिन्दु एक है, सूत्र एक ही है, पिरोयन भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिए सब एक ही ओरसे नाच रहे हैं। यदि यह अंगीकार कर लिया जाय तो फिर वर्ग-सम्प्रदाय, देश-विदेश, लिंग-लिप्सा आदिके भेद-विभेदमें क्यों मानव अपने मूल सूत्रसे हटकर उलझता रहता है, एक स्वर, एक लय, एक गतिसे हटता है, कठपुतलियोंकी तरह उसी इंगित पर निष्ठापूर्वक नाच करे तो अपनेको एकदेशीयताकी सच्ची कठपुतली प्रमाणित कर चिदानन्दकी लहरके साथ सर्वदा ही प्रवहमान होता रहेगा। ●

कहानी

उदारता

श्रीकृष्णगोपाल माथुर

★

'श्रीकृष्ण: शरणम् मम' इस गुरुमन्त्रका रात्रिको सोते समय शंकर नित्यकी भाँति जप करने लगा, पर आज जपमें मन नहीं लग रहा था, निद्रा भी नहीं आ रही थी, तड़पसे करवटें बदलते रात व्यतीत हुई।

अरुणोदयके पूर्व ही वह शय्या त्यागकर चल पड़ा—अपने स्वामी दयालके भवनकी ओर। तन क्षीण, मन मलीन और पश्चात्तापके कारण भवनकी सीढ़ियाँ चढ़ना भारी हो रहा था। किसी तरह ऊपर चढ़ ज्योंही वह कपाट खोलने लगा, त्योंही उसके चित्तको एक धक्का-सा लगा—'कवि दयाल आरामकुर्सीपर बैठे 'निधि' दैनिकपत्र पढ़ रहे होंगे। मैं कैसे सन्मुख जाकर नोटको पुन: पेटीमें रख सकूँगा। हाय-हाय मैंने पुत्रके लिए चप्पल लानेको केवल दस रुपयेके कागजके टुकड़े पर क्यों नियत बिगाड़ी ? परमेश्वरने अबतक मुझे बेदाग रक्खा था। किस पापके फलसे स्वामीके दस रुपये चुराए। 'जो कनका चोर वह मनका चोर' इस कहावतके अनुसार मुझे लोग पक्का चोर समझेंगे। प्रभु ! अब लज्जा आपके हाथ है। प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब कभी ऐसा पापकर्म नहीं करूँगा।'

यह सोचता हुआ शंकर किवाड़ खोल भीतर पहुँचा, तो वहाँ सभी सो रहे थे। बड़ा ही प्रसन्न हुआ वह; और उसने दस रुपयेका नोट चुपकेसे उसी संदूकमें फिर रख दिया, जहाँसे चुराया था।

इधर, ज्योंही भक्त कृपालने दरवाजा खटखटाया, कवि दयालने नेत्र मसलते हुए शय्या-त्याग किया। कृपालने भीतर प्रवेशकर 'निधि'का ताजा अंक दयालके हाथमें देकर कहा—'देखो, आपके काव्यकी प्रशंसा।'

'हाँजी, रातको कविसम्मेलन भोर होते-होते समाप्त हुआ। आप जानते हैं, मेरी रचनामें पदमाकर जैसी अत्युक्ति नहीं होती। मैं भक्त कुम्भन-

दासजी-जैसा निस्पृह और स्पष्टवक्ता कवि हूँ। इसीसे श्रोताओंने मेरा कविता-पाठ बहुत ही पसंद किया।'

दोनोंमें यह वार्ता चल ही रही थी कि दयालके बालकोंने आकर रोते हुए कहा—'पिताजी ! हम चाय कहाँसे पीयें—घरमें नहीं है ?'

बालकोंको दुलारते-पुचकारते कवि बोल उठे—'जाओ, पेटीमें-से दस रुपयेका नोट लेकर चायका सामान मँगालो।' यह सुनकर बालकोंको जितना हर्ष हुआ, उससे अधिक सेवक शंकरको हुआ। उसने मनमें निश्चय किया कि मेरे स्वामीके अर्थ-संकटमें सहायक होनेके हेतु आगामी माससे मैं अपने वेतनमें दो रुपये मासिककी कटौती करवा लूँगा।

कृपाल बोला-'भाई, तुम्हें सदा अर्थ-संकट रहता है। तुम श्रद्धा-विश्वास पूर्वक श्रीगोपाल-सहस्रनामके ११ पाठ नित्य 'श्रीपतिः श्रीनिधिः श्रीमान्मापतिः प्रतिराजहा' इस मन्त्रका सम्पुट लगाकर किया करो। निश्चयही तुम्हें अचानक अर्थ-प्राप्ति होगी। यह परीक्षित प्रयोग है।'

दयाल तुरन्त बोल उठे—'अजी, ऐसे कई प्रयोग मैं जानता हूँ; पर मुझे धन-प्राप्तिकी इच्छा है कहाँ ! मेरी रचनाओंकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। कविके लिए यह क्या कम महत्त्वकी बात है।'

कृपालके चले जानेपर थोड़ी देर शान्त रहनेके पश्चात् दयालका चिन्तन यों चला—मित्रके सामने मैं निस्पृह तो बन गया, परन्तु गृहस्वामीका तो मुख्य कर्त्तव्य होता है कि अपने आश्रित जनोंको हर प्रकारसे आराम पहुँचाना। आजसे मैं अर्थोपार्जनका विशेष प्रयत्न करूँगा, और साथ ही श्रीगोपाल-सहस्रनामका पाठ करना भी प्रारम्भ करता हूँ।

इन विचारोंके साथ कविवर दयाल श्रीद्वारकाधीशके उत्थापनके दर्शन करनेको चले गये। वहाँसे लौटनेपर उन्होंने कृपालको अपने भवनसे निकलकर जाते हुए देखा। 'मेरी अनुपस्थितिमें यह मित्र कैसे मेरे घरपर आया था। इस सम्बन्धमें पत्नीसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह बालकोंके चायपान हेतु ५०) रु० सहायतार्थ दे गए हैं।' सुनते ही दयालने चिढ़ते हुए कहा—'तुम जानती हो, हम स्वाभिमानी हैं; किसीकी यों ही सहायता कभी स्वीकार नहीं करते—चाहे भूखे-प्यासे रह जायँ।' यह कह दयाल ५०) रु० ले कृपालको लौटानेके निमित्त उसके दूरस्थ भवनपर गये।

कृपालने यह कहकर रुपये नहीं लिये 'कि भाई, मैं अपने ही बच्चे समझकर रुपये दे आया हूँ। लौटानेसे मुझे बड़ा ही क्लेश होगा। शर्त यह ठहरी कि कविसम्मेलनके पुरस्कारमें-से कभी ये रुपये लौटा दिये जायँगे।'

दयालने घर आकर पत्नीसे कहा—'देखो, अपना पुराना सेवक शंकर

कितने परिश्रम और ईमानदारीसे थोड़े वेतनमें प्रात:कालसे सन्ध्या समय तक अपना प्रत्येक कार्य करता रहता है। आगामी माससे इसके वेतनमें अवश्य वृद्धि कर देंगे।' पत्नीने हँसकर कहा—'क्या हजार रुपये कहींसे मिल गये हैं।'

शंकर यह सब बातें सुन रहा था और मनमें कह रहा था कि 'नहीं-नहीं, मैं स्वामीको और भी संकटमें कभी नहीं डालूँगा, प्रसंग आयगा तो सहर्ष अस्वीकार कर दूँगा।'

इतने ही में बाहरसे डाकियेने आवाज दी—'कविजी, बीमा है।' दयालने एक हजार एक रुपये ज्यों ही लिफाफेमें-से निकाले पति-पत्नी आश्चर्य-चकित हो गए, प्रेषकका नाम नहीं। शंकर तो यह खबर पाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ, पर वेतन-वृद्धि न करानेका उसका निश्चय टला नहीं।

कुछ दिन रीते बीते। इस अवधिमें कविवर दयालने कई नयी रचनाओंका निर्माण, भगवत्-स्मरणसे बचे समयमें, कर लिया। एक दिन मुरादाबादसे, महाकवि-सम्मेलनमें सम्मिलित होनेका तार उन्हें मिला। प्रस्थानके समय रेलवे स्टेशनपर अनेक लूले-लँगड़े, गूँगे, अन्धे याचकगण उनके पीछे पड़ गये। सबको उन्होंने थोड़ा-थोड़ा पैसा देकर सन्तुष्ट किया। मुरादाबादमें जैसा कविजीका स्वागत हुआ, वैसाही, आजकी भुखमरी, लोगोंकी स्वार्थपरता, लोलुपता, शासनकी अनीति आदि दुर्गुणोंके विरुद्ध उनकी जोरदार रचनाएँ सुनकर पंडालके श्रोता बार-बार तालियाँ बजाकर आनन्द विभोर हो उठे। दयालजीको सर्वापेक्षा-अधिक पुरस्कार मिला।

मनमें कई संकल्प करते दयाल घर लौटे। विदाईके समय लोग उन्हें पुष्प-मालाएँ पहना रहे थे; तभी एक ध्वनि आयी "यह पुष्पोंका नाश—धनका नाश व्यर्थ है। इस पैसेसे भूखेका पेट भरो।"

बीचके स्टेशनपर ज्योंही गाड़ी रुकी, यात्रियोंकी भागदौड़ मच गयी। एक महिलाके करुण-क्रन्दनकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। दयालजीने ट्रेनसे नीचे उतरकर महिलाका सब हाल ज्ञात किया। एक पालनीय कर्त्तव्यके वश हो, गाड़ीसे अपना सामान उतार, स्वयम् उसे उठाया और महिलाको साथ ले, उसके सामानकी तलाशमें चले। एक युवक ताँगेमें सामान लिये जा रहा था। महिला मोहनीने पहचान लिया। कविजीने बड़ी बहादुरी, तत्परता और समझदारीके साथ युवकसे सामान ले मोहिनी-को सम्हलाया और विश्रामालयमें मोहिनीको आरामसे ठहराकर आप भी वहीं ठहर गये। दूसरी गाड़ीसे दोनोंने प्रस्थान किया। वीरपुर स्टेशनपर

उतर मोहिनीको उसके घर सुरक्षित रूपसे पहुँचाकर कविजी रवाना हुए अपने भवनकी ओर सुल्तानपुरकी दूसरी ट्रेनसे। मोहिनीके घरवालोंका प्रत्युपकार करनेका अवसर ही नहीं दिया उन्होंने। विलम्ब, परेशानीका विचार न कर उनकी आत्माको कर्त्तव्य-पालन करनेसे बड़ा सन्तोष था।

"अबतो पड़ौसिन माँ सारदासे प्रथम प्रणामकर गृह-प्रवेश करूँगा" यह विचार करते दयाल जा रहे थे, इतनेहीमें वृद्धा शारदा सामने आकर दीन-भावसे धीरे-धीरे बोली—"बेटा, तेरी धर्मकी बहन माधुरीके विवाह-की जुटायी सभी सामग्री चोर चुरा ले गये। बारात कल आनेवाली है। हाय, अब मैं क्या करूँ?"

यह सुनकर दयालके दयालु मनमें बड़ा दुःख हुआ, उदारता उमड़ आयी। उन्होंने तत्काल पुरस्कारकी आधी निधि चुपचाप माँके हाथोंमें थमाते हुए कहा—"कम पड़े तो मुझसे और ले लेना।" माँ शारदाने लेनेसे बहुत इनकार किया, पर कविवरकी उदारवृत्तिके सामने उसकी एक नहीं चली।

गलीका मोड़, अन्धकारका आगमन, ज्योंही दयालजी अपने भवनकी ओर बढ़े त्योंही एक युवकने छुरा दिखाकर उनसे रुपये छीनना चाहा। पहले तो दयालजीका धीरज छूटने लगा, किन्तु "सङ्कट कटै मिटै सब पीरा, जो सुमिरै हनुमत बलबीरा" इस पदका स्मरण करते ही उनमें साहसका संचार हो गया, निर्भीकतासे बोले—"मान जाइये आप। देखा है यह मेरा मोटा लम्बा रामलठ्ठ! छुरा चलाने के पहले तुम्हारी खोपड़ी·············" दयालजीका वाक्य पुरा भी होने नहीं पाया था कि नामू युवक चिल्लाता हुआ आकर कहने लगा—"भाई गामू! माँ बेचैन हो गयी, शीघ्र चलो घरको।" यह सुनते ही गामू तुरन्त छुरेको नालीमें फेंक कर दौड़ा—माँका उपचार किया—अपने दुष्कर्म पर पछताते और भगवान्‌से दीन-भावसे प्रार्थना करते हुए। हृदय-की सच्ची प्रार्थनासे उसकी माँ स्वस्थ हो गयी। मातृ-भक्त था वह।

दयालजी प्रसन्न होते हुए घर पहुँचे, और पत्नीको सारा वृत्तान्त सुना दिया। हर्षातिरेकसे पत्नी बोली—"लाइये वह हाथ, जिससे आपने परोपकारके कार्य किये, मैं उसे हर्षपूर्वक चूम लूँ।" यह सुन दयालजी मनमें बहुत ही प्रसन्न हुए कि 'मेरी पत्नी मेरी उदारवृत्तिमें सहयोग-दात्री है?'

× × ×

"अरे भाई, तुम कौन हो, बाजारके बीचमें मेरे पाँव क्यों पकड़ लिये? छोड़ो।" युवकने कवि दयालजीके पांव और भी दृढ़तासे पकड़

अश्रुओंसे भिगोते हुए कहा—"पहले आप यह आश्वासन दीजिये कि आपने मेरा अपराध पूर्णतया क्षमा कर दिया !"

दयालजी आश्चर्य-चकित हो बोले–'भई, कैसा अपराध, कौन हो तुम? थोड़ा बताओ तो।' युवकने ग्रीवा उठाते हुए कहा—'पहचानिये, मैं वही पापी हूँ, जो छुरा दिखाकर आपसे सन्ध्या समय रुपये छीनना चाहता था। वर्ष बीत चुके हैं, पर वह पापाग्नि मेरे हृदयमें अभीतक जल रही है।'

'अरे भैय्या गामू, भूल जाओ उस घटनाको। अब पश्चात्तापसे तुम्हारा हृदय निर्मल बन गया है। यही प्रभुकी ओरसे क्षमा है। निर्भय होकर सत्कार्योंमें जुट जाओ। यही मेरी असीस है।'

गामूने शेष जीवनमें सत्कार्य करते रहनेकी प्रतिज्ञा की, किन्तु इतनेसे उसको सन्तोष नहीं हुआ। उसने ५०१) जेबसे निकालकर दयालजीके चरणोंमें रख हाथ जोड़ कहा—'कृपया इन्हें स्वीकार करें। दयालजीके अस्वीकार करनेपर गामूने फिर कहा—'मैं चाहता हूँ कि आपकी रचनाएँ देशके उत्थानमें सहायक हों······'दयालजी बीचमें बोल उठे—'क्या यह उसका पुरस्कार है! भाई, मैं तो सुकवियोंके चरण-रजकी भी रज हूँ। आप इस निधिसे दीन-दुखियोंका भला कीजिये और भगवद्भजन कर अपना जीवन सुधारिये।' गामूने यह उपदेश मानकर ऐसा ही किया। उसके भगवत्परायण हो जानेसे उसके कुमार्गगामी मित्र भी भगवत्प्रेमी बन गये।

उधर, शंकर सचमुच ही अपने वेतनमें-से २) मासिककी कटौती करवाकर दूने उत्साहसे दयालजीके घरका काम-काज करने लगा। मानों अपढ़ होनेपर भी उसको सेवा-धर्मका पूरा-पूरा ज्ञान हो।

अब भी कविवर दयाल 'श्रीगोपाल-सहस्रनाम'का पाठ नियमित, मन लगाकर करते हैं। अर्थाभाव अब उन्हें नहीं रहा। भगवत्कृपासे गृहस्थीमें आनन्दकी लहरें लहरा रही हैं और दिनोदिन श्रीभगवान्‌की भक्तिमें दृढ़ता आती जा रही है। अब भगवान्‌की महती कृपासे उनकी वाणीमें ऐसी शक्तिका समावेश हो गया है, जिससे कई कवियोंका कष्ट दूर हो गया है। पर वे सिद्ध नहीं बन बैठे हैं, इस सम्मानसे सदा दूर रहते हैं और जब-जब मित्र कृपाल मिलते हैं, तब-तब इसका सारा श्रेय उनको दिया करते हैं।

●

पार्वतीका अनन्य अनुराग—

शिवा और शिवका मिलन

★

शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेश एक ही परमात्माके पाँच सगुण रूप हैं। इन सभी रूपोंमें सद्गृहस्थ द्विज एक ही परमात्माका पूजन करते हैं। परात्पर ब्रह्मके ये सभी रूप नित्य, शाश्वत, परमात्मस्वरूप हैं। उनके शरीर अप्राकृत, चिन्मय एवं जरा-मृत्युसे रहित हैं। वे सभी परमानन्दसंदोह, ज्ञानैकविग्रह तथा समस्त भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं। मायिक दोष इनकी छायाको भी नहीं छू सकते। एक ही परमेश्वर सृष्टि कार्यके लिए ब्रह्मा, पालनके लिए विष्णु, वात्सल्य स्नेह प्रदान करके शक्तिप्रदान करनेके लिए भगवती शक्ति, मङ्गलकरण तथा विघ्नहरणके लिए गणेश तथा बुद्धिको प्रेरित करके सत्कर्ममें लगानेके लिए वरेण्य तेजसे सम्पन्न सविता हैं। वेदोंमें इन सबका नामोल्लेखपूर्वक स्तवन प्राप्त होता है। विभिन्न पुराणोंमें इनकी महिमाका गान किया गया है। कहीं एककी प्रधानता बतायी गयी है, तो दूसरी जगह दूसरेकी। मूलतः एक होनेके कारण ही इन सभी रूपोंका परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाला वर्णन भी सुसङ्गत है।

शिवरात्रिके पुण्यपर्वपर उन परमात्मा शिवकी पुण्य-कथा सुननेसे जगत्का मङ्गल होता है, अतः यहाँ शिवपुराणके आधारपर उनकी किञ्चिन्मात्र महिमा बतायी जाती है। एक समय देवर्षि नारदके उपदेशसे पार्वतीजी परमेश्वर शिवको पति रूपमें प्राप्त करनेके लिए कठोर तपस्यामें संलग्न थीं। उस तपस्यासे उद्भूत तेजके कारण समस्त त्रिलोकी सन्तप्त हो उठी। समस्त देवताओंने भगवान् शङ्करके पास जाकर पार्वतीजीको तपस्यासे विरत करनेका अनुरोध किया। भगवान् शिवने पार्वतीजीकी प्रीतिकी परीक्षाके लिए सप्तर्षियोंको भेजा। सप्तर्षि गये और बहुत-सी उलटी-सीधी बातें सुनाकर उनके मनको शङ्करजीकी ओरसे फेरनेका प्रयत्न किया। पार्वतीने उन सबकी बातोंका मुँहतोड़ उत्तर देकर अपने निश्चयको अत्यन्त दृढ़ कर लिये। सप्तर्षि जय-जयकार करके लौट गये। तदनन्तर उन्हें तपस्याका फल देनेके लिए भगवान् शङ्कर स्वयं चले। वर देनेके पूर्व वे स्वयं भी उनके प्रेमकी परीक्षा कर लेना चाहते थे। सर्वज्ञ शिवने गिरिराज-नन्दिनीके अनन्य अनुरागको जानते हुए भी लोकमें उनकी महिमा प्रकट करनेके लिए परीक्षाका उपक्रम किया। वे एक तपस्वी और तेजस्वी बृद्ध ब्राह्मणका

रूप धारण करके पार्वतीजीके आश्रममें गये। देवी उमाने अतिथिदेवताका पूजन किया और अपने लिये योग्य सेवाके विषयमें जिज्ञासा की।

ब्राह्मणने अपना संक्षिप्त परिचय देकर पूछा—भद्रे। तुम कौन हो और ऐसी कठोर तपस्या किसलिए करती हो?

पार्वतीने अपने पूर्व-जन्मका वृत्तान्त बताकर कहा—'मैं भगवान् शिवको ही पुन: पति-रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ, इसलिए दीर्घकालसे उनकी समाराधना कर रही हूँ; तथापि अपने प्राणवल्लभको अब तक न पा सकी। अत: अब अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहती हूँ।'

ब्राह्मण-देवताके मना करनेपर भी वे प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं। देर तक ज्वालामें स्थित रहनेपर भी वह आग उन्हें जला न सकी। धीरे-धीरे उनका शरीर आकाशमें ऊपरकी ओर उठा और अग्निकी ज्वालासे बाहर आकर स्थित हो गया।

यह देख ब्राह्मण हँसने लगे और बोले—'आश्चर्य! तुम्हें आग जला नहीं सकी—यह तुम्हारी तपस्याकी सफलताका सूचक है, परन्तु अब तक मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ! इससे विफलता सूचित होती है। अब तो मैं चला! जैसा तुम्हारा कार्य है, वैसा परिणाम होगा। जब तुम्हें इसीमें सुख है; तब मुझे कुछ नहीं कहना है।'

पार्वती—'ठहरिये, जाते क्यों हैं? मुझे मेरे हितकी बात बताइये।'

ब्राह्मण—'जब तुम्हें अपने हिताहितकी पहचान ही नहीं है; तो क्या बताऊँ? तुमने शिवको क्या समझ रक्खा है?

पार्वती—'वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्होंने स्वेच्छासे ही शरीर धारण किया है।

ब्राह्मण—'उनकी जात-पाँतका कुछ पता है?'

पार्वती—शिव निर्गुण ब्रह्म हैं। जो निर्गुण हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूप हैं, उनकी जाति कैसे हो सकती है?

ब्राह्मण—'शिवमें न कोई विद्या दिखायी देती है, न ज्ञान, तुम उनकी किस विशेष-तापर मुग्ध हो!

पा०—भगवान् सदाशिव समस्त विद्याओंके आधार हैं, उन पूर्ण परमात्माको किसी विद्यासे क्या काम? उन्होंने ही अपने नि:श्वासभूत वेदोंका ज्ञान ब्रह्मा आदिको दिया था। जो आत्म-ज्ञानस्वरूप हैं, उनके लिए अनात्म-वस्तुओंका ज्ञान किस काम का?

'उनकी वेषभूषा अमङ्गल है, पञ्चानन, विरूपाक्ष। कौन-सा आकर्षण है उनके रूपमें?'

'उनका वेष आपको दृष्टिमें अमङ्गल हो सकता है, किन्तु उनके नामस्मरण मात्रसे सबका मंगल होता है।'

'वे शरीरमें चिताका भस्म लगाते हैं, अङ्गराग नहीं।'

'परन्तु उनके अङ्गोंसे झड़कर गिरी हुई भस्मराशिको समस्त देवता अपने मस्तकपर धारण करनेके लिए लालायित रहते हैं।'

'अवधूतके साथ रमणीकी, पञ्चाननके साथ चन्द्रमुखीकी तथा नरमुण्ड-मालाधारीके साथ हीरक हारधारिणी तुम जैसी मनोरमाकी क्या शोभा है?'

आपके पास वह दृष्टि ही नहीं कि शिवका सौन्दर्य देख सकें। बहिर्मुखके लिए ब्रह्मां-स्वाद सुदुर्लभ है। अस्तु आप जैसा बताते हैं, वैसा ही सही, सारे दोषोंके आकर हैं शिव, तथापि वे ही मेरे प्राणवल्लभ हैं। मुझे मेरे इस दृढ निश्चयसे कोई नहीं डिगा सकता। महापुरुषोंकी निन्दा करनेवाला ही नहीं, उसे सुननेवाला भी महापापी माना गया है। आप बड़-बड़ाते जारहे है। मैं आपकी कोई बात नहीं सुनूँगी, मैं जारही हूँ यहाँ से।'

पार्वती ज्योंही जाने लगी, भगवान् शङ्करने मनोरम नयनाभिराम रूपसे उनके सामने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया! प्राण-वल्लभको सहसा सामने पाकर पार्वतीने लज्जा वश अपना मुँह नीचेकी ओर कर लिया।

शिव-स्तुति

असित-गिरि-मस ले सिन्धुके पात्र घोले-
सुरतरु-टहनीकी लेखनी, भूमि-पत्री·
ग्रहण कर, लिखे जो शारदा-सर्वदा ही
तदपि तव गुणोंका पार पावे न शम्भो!

'कविपुष्कर'

भगवान् शंकर कहने लगे—'प्रिये मुझें छोड़कर कहाँ जाओगी? आजसे मैं तपस्याके मोल खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ।'

पार्वती देवी आनन्दके महासिन्धुमें निमग्न हो गयीं। उनका तपस्याजनित सारा क्लेश मिट गया। अभीष्ट फल मिल जानेसे नया उत्साह, नई शक्ति आ गयी।

शिवरात्रिको ही शिव और शिवा दाम्पत्यके प्रणयसूत्रमें आबद्ध हुए थे।

'शङ्ख'

भगवान् शिव प्रकृति परे निर्गुण परमात्मा हैं। निराकार, निर्विकार, मायाधीश एवं परात्पर हैं! गोत्र, कुल और नामसे रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। तथापि अपने भक्तोंके प्रति अत्यन्त दयालु हैं। भक्तोंकी इच्छासे ही ये सगुण निर्गुण हो जाते हैं। निराकार होते हुए भी सुन्दर शरीर धारण कर लेते हैं और अनामा होकर भी बहुतसे नामवाले हो जाते हैं।

(शिवपुराण रुद्रसंहिता अ० ४८)

लघु कथा

संत-कथा

श्रीफूलचन्द गुप्त

★

व्रज-भूमि अनादि कालसे अनेक सन्त-महात्माओंकी भजनस्थली रही है। यहाँ अनेक उच्चकोटिके महात्मा हुए हैं, जिन्होंने निरन्तर भगवद्-भजनमें लीन रहकर भगवान्‌का साक्षात्कार किया है। कुछ सन्तोंने तो व्रजके प्रसिद्ध श्रीविग्रहोंको प्रकट भी किया है, जिनकी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

ऐसे ही सन्तोंमें एक सन्त माधवदासजी भी यहाँ हुए हैं जो मधुकरीके लिए वस्तीमें आया करते थे।

एक दिन सन्त माधवदास एक बुढ़ियाके द्वारपर भिक्षाके लिए पहुँचे और अपने नियमानुसार 'नारायण हरि' कह कर उन्होंने बुढ़ियासे भिक्षा देनेके लिए कहा। परन्तु वह बुढ़िया चौकेमें पोता लगा रही थी और उस कार्यमें इतनी व्यस्त थी कि उसने सन्तकी ओर ध्यान नहीं दिया। महात्माने एक बार, दो वार 'नारायण हरि' कह कर आवाज दी। परन्तु बुढ़ियाने फिर भी नहीं सुनी, अनसुनी कर दी। इसपर सन्तने पुनः एक वार 'नारायण हरि' कहा। अब बुढ़ियाको रिस आ गयी और उसके हाथमें जो पोता था उसे ही फेंक कर उसने सन्त माधवदासको मारा। सन्तने वह पोता उठाकर अपनी झोलीमें रख लिया और बुढ़ियासे यह कह कर चल दिये—

'सन्त माधवदास अब बदला इसीका देगा।
पोता दिया है तूने पोता तुझे मिलेगा॥'

अब सन्त अपनी कुटियाके पास जो सरोवर था, उसके घाटपर बैठकर उस पोतेको खूब मलमलकर साफ करने लगे। उसकी सब कोचड़ निकाल दी और खूब साफ कर उसकी निर्मल काया कर दी। फिर उसको सुखाकर उन्होंने उसकी फूल बत्तियाँ बनाईं और उनको घृतमें डाल दिया। अब वे नित्य-प्रति भगवान्‌की आरती करनेके लिए उन्हें प्रयोगमें लेने लगे। अब वह पोता एक कविकी वाणीमें कहता है—

धन्य है सत्-पुरुषोंका संग,
बदल देते जीवनका ढंग।

पोता मैं रोता था पहले पड़ा कीचके बीच,
अङ्ग-अङ्ग सड़ते गलते थे धर्म-कर्म सब नीच॥

हुआ था जीने से भी तंग,
धन्य है सत्-पुरुषोंका संग।

कोमल करसे मल-मल धोया कर करके निज पीत,
निकल पड़ी तब उज्वल काया ज्यों कोमल नवनीत॥

हुआ पावन मेरा सब अंग,
धन्य है सत्-पुरुषोंका संग।

बड़े प्रेमसे बना फूल-सा दिया आज्यमें डार,
ऐसी कृपा सन्तने करके दिया अधिक है प्यार॥

बना मैं पूजाका अर्धङ्ग,
धन्य है सत्-पुरुषोंका संग।

झूला करूँ आरती ऊपर गरुड करें गुनगान,
मेरे ही प्रकाशमें दर्शन देते श्रीभगवान्॥

भक्त आवें भरलें उत्संग,
धन्य है सत्-पुरुषोंका संग।
बदल देते जीवनका ढंग॥

यह तो पोतेकी कहानी रही। अब वह बुढ़िया क्या कहती है सुनिये—

कुछ ही समयके बाद सन्तकी कृपा और आशीर्वादसे उस बुढ़ियाके घरमें पोता (पौत्र) हुआ। तब वह अपनी सहेलीसे कहती है—

पोता दिया न प्रेमसे रिसबस किया प्रहार,
सन्त कृपासे खेलता पोता मेरे द्वार॥
जो मैं ऐसे सन्तको देती गोद पसार,
तो द्वारे मम खेलते ध्रुव-प्रह्लाद उदार॥

•

होलीके लिए आह्वान

होली हे बृजराज दुलारे।

बहुत दिनन सों तुम मनमोहन, फाग हि फाग पुकारे,
आज देखिहौ सैल फाग की, पिचकारिनके फुआरे,
चले जब कुमकुम न्यारे।

अब क्यों जाय छिपे जननी ढिग, ए रे कान्हर कारे,
कै तो निकसके होली खेलो, कै मुख सों कहो हारे,
जोड़ कर आगे हमारे।

निपट अनीत उठायी तुमने, रोकत गैल गिरारे,
'नारायन' अब खबर पड़ेगी नेक तो आय जा द्वारे,
सूरत अपनी दिखारे।

होलीका उपालम्भ

तेरे संग होरी खेलनमें मेरी गयी है मुँदरिया खोय
लाला रे मेरी गयी है मुँदरिया खोय

यह मुँदरी मेरी सवा लाखकी, मोल न पैदा होय
लाला रे मेरी गयी—

मुँदरीके बदले तेरी मुरली छिनाऊँ, जगत हँसाई होय
लाला रे मेरी गयी—

दया सखी तेरे करत निहोरे, नई गड़वा दऊँ तोय।
लाला रे मेरी गयी—

वृन्दावनमें होलीके पुण्यपर्वपर दिव्य झाँकीका दर्शन—

रङ्गमहलको होली

श्रीगौरीशंकर श्रीवास्तव

★

व्रज-रज और व्रजराज इन दो शब्दोंमें बड़ा अद्भुत आकर्षण है। जब कभी इन दोनों शब्दोंकी ध्वनि मेरे कानोंमें सुनाई देती है उस समय अङ्गोंमें बड़ी मीठी-सी सिहरन होने लगती है तथा हृदय आनन्द-विभोर हो जाता है। व्रजरज उस सलोने व्रजराजकी याद दिलाती है जो व्रजरजमें प्रकट हुआ और जिसने ग्वालवालोंके साथ वालपनकी मधुरातिमधुर लीलाएँकीं। वह लीला-विहारी यशोदाकी आखोंका तारा, नन्दका दुलारा और समस्त व्रजमण्डलका सहारा था। व्रजराजके नवनीत तुल्य-हृदय पर व्रजरजने ऐसा एकच्छत्र राज्य स्थापित कर लिया था कि व्रजसे जानेके पश्चात् भी वह व्रजरजकी महिमा न भूल सका। भूलता भी कैसे ? व्रजरज तो मुक्तिको भी मुक्त करने वाली है और तीनों लोकोंके स्वामीने वहाँ भक्तोंकी प्रेमडोरमें वँधकर ललित लीलाएँ की हैं। किसो भक्तने कहा भी है :—

मुक्ति कहत गोपाल सों, मेरी मुक्ति कराय।
व्रज-रज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त है जाय॥
धनि गोपी अरु ग्वाल धनि, धनि जसुदा धनि नन्द।
जिनके आगे फिरत है धायो परमानन्द॥

व्रजराजको सदैव व्रजरज और व्रजांगनाओंकी याद सताती रही। यहाँ तक कि ५००० वर्षके पश्चात् भी वह श्याम-सलोना, व्रजका खिलौना व्रजराजकुमार उस व्रजरज (वृन्दावन) में आज भी अपनी सुखदायिनी रासक्रीड़ा किया करता है। उस रास-क्रीड़ाका रसास्वादन उसके अनन्य प्रेमी भक्त जन ही कर सकते हैं।

कह नहीं सकता कि किस जन्मके सुकर्मसे मुझ-जैसे तुच्छ और अकिञ्चन प्राणीको उस लीलाविहारीकी एक रसमयी झांकीका दर्शन उस समय हुआ, जब कि मैं सपरिवार होर्ल के अवसर पर मुरलीमनोहरकी लीलास्थली वृन्दावनको गया हुआ था।

दिनाङ्क १६–३–६७ फाल्गुन-शुक्ल १३ का दिन था। मैं सायंकालको लगभग ६ बजे श्रीशाहविहारीके मन्दिरके दर्शनके लिए गया था वहाँसे लौटनेपर रास्तेमें प्रभु-कृपासे मेरे

मस्तिष्कमें निधिवनके दर्शनका भी विचार उठा। तुरन्त ही निधिवन पहुँचा। सबसे पहिले मैंने श्री विहारीजीके प्राकट्य-स्थलके दर्शन किए। वहाँ पहुँचते ही मेरे मनको अपूर्व शान्ति मिली और मैं वहाँ पाँच-दस मिनट तक मौन होकर अपने हृदय दुलारेके ध्यानमें बैठा रहा। उनकी लीलाओंका चिन्तन करता रहा। बड़ा आनन्द आया उस स्थलपर और श्यामकी याद करके हृदय भर आया। बहुत रोकने पर भी प्रेमके दो आँसू उस स्थल पर गिर ही पड़े।

तत्पश्चात् वहाँसे चलकर मैंने 'रङ्गमहल'के दर्शन किए। रङ्गमहलमें बिहारीजीकी सेज है भक्तोंकी भावना है कि श्रीबाँकेविहारीजी रातको उस शैय्यापर आकर शयन करते हैं। जब मैं वहाँ रङ्गमहलके दर्शन करने गया तो उस समय आरती होने वाली थी और अनेकों दर्शनार्थी भक्त जन खड़े हुए थे। श्रीरासविहारीजी गोस्वामीने जिनकी कि वहाँ सेवा थी, आरती की। सब लोगोंने प्रेम पूर्वक सेजके दर्शन किए और प्रसाद लिया। कुछ व्यक्तियोंने गोस्वामीजीसे पूँछा कि 'महाराज; ऐसा सुना जाता है कि भगवानका यहाँ कुछ न कुछ प्रत्यक्ष लीलाविषयक चमत्कार दिखाई दिया करता है' गोस्वामी श्री रासविहारीजीने कहा कि 'यह बात सही है।' परन्तु कुछ नास्तिक व्यक्तियोंने यह बात माननेसे इन्कार कर दिया। गोस्वामीजीने कहा कि 'यह सही है।' इस प्रकार बातों ही बातोंमें जिद हो गयी। प्रमाणके तौर पर गोस्वामीजीने चुनौती दी और कहा—'आज रातको भगवान् अपनी प्रियाजीके साथ इस रङ्गमहलमें होली खेलने आयेंगे।' जब ये बातें हो रही थी, उस समय उस भीड़में मैं भी उपस्थित था। गोस्वामीजीने सब व्यक्तियोंको वह सेज, जिसपर बहुत सुन्दर शुभ्र वस्त्र बिछे हुए थे, दिखायी और तकियोंको भी उलट-पलट कर सब लोगोंको तथा उनको भी, जो भगवानकी लीलाके बारेमें सन्देह कर रहे थे, दिखाया। मैंने भी भली प्रकार देखा कि उस समय उस सेजपर किसी भी प्रकारका रंकका छींटा तक नहीं था। सब लोगोंसे गोस्वामीजीने कहा 'जिन व्यक्तियोंको भगवान्का चमत्कार देखना हो वे सुबह सात बजे आरतीके समय रङ्गमहलके पट खुलनेसे पहिले आ जायँ।' इतना कह-कर गोस्वामीजीने हम सबके सामने रङ्गमहलके पट बन्द किये और ताला लगाकर हम सबके साथ घरको आये। मेरे लिए श्यामसुन्दरका चमत्कार देखनेका यह प्रथम अवसर था। वैसे तो मैंने भगवानके चमत्कारके विषयमें अनेकों घटनाएँ सुन रखी थीं।

दूसरे दिन यानी फाल्गुन शुक्ल १४ को प्रातः काल आरतीसे पहिले मैं सपरिवार उस चमत्कारको देखनेके लिए पहुँच गया तथा अन्य सब लोग भी वहाँ आ पहुँचे। गोस्वामीजी हम सबके बाद आये और आकर उन्होंने हम सब लोगोंके सामने रङ्गमहल का पट खोला। जब पट खोला गया उस समय वहाँ जो चमत्कार दृष्टिगोचर हुआ उससे सब आश्चर्यचकित हो गये। रङ्गमहलमें से ऊपर वसन्ती-रङ्ग तथा जमीन पर अबीर गुलाल पड़ा हुआ था। जो लोग बहस कर रहे थे, यह चमत्कार देखकर उनको भी श्रद्धासे नत-मस्तक होना पड़ा। मेरा तो हृदय इस चमत्कारको देखकर आनन्दसे भर गया और अपने श्यामसे प्रार्थना की कि 'ऐसा चमत्कार प्रतिदिन देखा करूँ।'

●

रंगभरी पिचकारी

(१)

केसररंग कमोरी भरी, धरी काँधे अबीर गुलालकी झोली,
माती बनी इठलाती भयी, रसराती सुनाती उमंग सों बोली।
गावत है अनुरागके राग, बजावत झाँझ मृदंग ढपोली,
संग सखीनकी टोली लियें, वृषभानुलली चली खेलिबे होली॥

(२)

आवत स्याम सखीनें लखे, लियें संगमें ग्वालन कौ दल भारी।
फेंटि कसें विहँसें किलकें मिल गावत गीत बजावत तारी॥
दौरि भिरीं जुग टोली चली, दुहुँ ओरसों रंगभरी पिचकारी।
लालके गाल गुलाबी भये, व्रजबालकी भींज गयी नयी सारी॥

—श्रीभगवानदत्त चतुर्वेदी

'अभिमान चूर'

मैं बहुत बड़ा प्राणी
विशालकाय
हाथी,
बड़ा अभिमान है मुझको
मुझपर।
जिससे टकराऊँ
अभिमान चूर हो जाये
उसका,
पर उस दिन चींटी ने
मेरा अभिमान तो क्या?
मुझे ही चूर-चूर कर डाला।

—श्रीरामचन्द्रराव दवे

विभिन्न विद्वानोंके चारु विचार

शास्त्र-चर्चा-गोष्ठी

(पटना, १९ दिसम्बर १९७०)

★

श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, आयुर्वेद-शिरोमणि, वैद्यरत्न आयुर्वेदाचार्यकी सुपुत्रीके शुभ-विवाहके अवसर पर दिनांक १३-१२-७० को अपराह्ण कालमें एक शास्त्रचर्चा-गोष्ठीका आयोजन वैद्यनाथ भवनके अहातेमें ही निर्मित पण्डालमें किया गया; जिसकी अध्यक्षता वाराणसीके लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् पं० श्रीकालीप्रसादजी मिश्रने की।

गोष्ठीमें वाराणसी तथा पाटलिपुत्रके सनातनी एवं आर्य-समाजी दोनों ही प्रकारके विद्वान् सम्मिलित हुए थे। गोष्ठीका शुभारम्भ पं० वामदेव जी मिश्र तथा पं० ढुंढिराज पर्वतीयके मंगलाचरणसे हुआ। उस समय गोष्ठीमें समवेत विद्वानोंका अभिनन्दन करते हुए वैद्यनाथ-प्रतिष्ठानके निदेशक पं० श्रीदुर्गाप्रसाद जी शर्माने गोष्ठीकी महत्तापर प्रकाश डालते हुए बताया कि वर्तमान समयका मूल प्रश्न यह है कि 'स्वदेश तथा विदेशमें हिन्दूधर्मके स्वरूपकी रक्षा कैसे की जाय ?' वस्तुस्थिति यह है कि भारतके अन्दर भी संस्कृतके माध्यमसे समस्त धार्मिक विधियों एवं पौरोहित्य-कर्मको सुचारुरूपेण सम्पादित करानेवाले विद्वानोंकी, यहाँ तक कि तिथि-मिति बतानेवाले लोगोंकी भी उत्तरोत्तर कमी होती जा रही है, जो शुभ नहीं कही जा सकती। भारतके बाहर डच, गायना, फिजी, ट्रिनीडाड आदि देशोंमें जो लाखोंकी संख्यामें प्रवासी भारतीय बसे हुए हैं, उनके पास धार्मिक कृत्यों एवं अनुष्ठानोंके सम्पादनार्थ लोग नहीं हैं और वे लोग बड़ी कठिनाईसे अपनी भारतीयताको अक्षुण्ण रखे हुए हैं। इस सम्बन्धमें सनातन जगद्के मूर्द्धन्य नेताओं, जगद् गुरु श्री शङ्कराचार्यजी, स्वामी करपात्रीजी, स्वामी चेतानन्दजी प्रभृति लोगोंसे भी मैं निवेदन कर चुका हूँ। अस्तु आजकी गोष्ठीमें समवेत विद्वानोंसे मेरा विनम्र निवेदन है कि हमारी संस्कृतिकी रक्षा कैसे सम्भव हो, इस ज्वलन्त प्रश्नपर अपने सुचिन्तित विचारोंसे हमें लाभान्वित करें, क्योंकि हमारी संस्कृतिकी रक्षाका प्रश्न ही आजका मुख्य प्रश्न है। राष्ट्रकी रक्षाके लिए संस्कृतिकी रक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

मान्य श्री शर्माजीके स्वागत-भाषणके बाद वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, काशीके सीनियर फेलो एवं अध्यापक श्री विश्वनाथ शास्त्री दातारने हिन्दू-धर्मके लक्षणोंपर प्रकाश डाला और कहा कि 'वेदोंको छत्रछायामें रहकर अपरिहार्य स्थिति आनेपर लक्षणमें परिवर्तन किया जा सकता है और धर्म-शास्त्रमें ऐसी व्यवस्था भी रखी गयी है।

काशीके सुप्रसिद्ध व्याकरण-वेत्ता आचार्य पं० श्री रामप्रसाद त्रिपाठीने विशदरूपेण ऐतिहासिक काल-क्रम-विधिसे भारतके साथ विदेशोंके सम्पर्कका विवरण प्रस्तुत करते हुए वताया कि 'वर्णाश्रम-व्यवस्था अत्यन्त वैज्ञानिक है। इसके द्वारा मानव-जीवनको मर्यादावद्ध किया गया है। यह व्यवस्था सुदृढ़ भित्तियोंपर आधृत है।' आपने कहा कि 'मर्यादाहीन होना हिन्दूसमाजके हितके विरुद्ध होगा।'

विहारके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० रामपदारथ शर्माने कहा कि 'धर्म कुछ सनातन मूल्योंको लेकर चलता है। नियम और आचारके प्रश्नपर भले ही भौगोलिक स्थितिके अनुसार मतभेद हो, किन्तु धर्मका जो शाश्वत स्वरूप है, वह सदा, सर्वत्र एक-सा रहता है। जहाँ तक हिन्दू-धर्मका सम्बन्ध है, हमें मानना होगा कि वह सर्वजनीन है। मेरी दृढ़ धारणा है कि 'यदि समाज सनातन धर्मके आधारभूत सिद्धान्तोंपर टिका रहे तो जीवनकी स्थिरता विनष्ट नहीं हो सकती।

काशीके दार्शनिक एवं वा० सं० वि० वि० के वेदान्तविभागाध्यक्ष पण्डित देवस्वरूप मिश्रने अपने सारगर्भित व्याख्यानमें बताया कि 'समयानुसार आचारमें परिवर्तन किया जा सकता है। आपने पूर्ववर्ती वक्ताके कथनका खण्डन करते हुए कहा कि यह कहना कि 'आचार धर्म नहीं है, गलत है, 'आचारः परमो धर्मः' प्रसिद्ध ही है। आपने ईसाइयतके प्रचारके सन्दर्भमें कहा कि 'हम ईसाइयतसे तभी प्रतिस्पर्द्धामें सक्षम होंगे, जब हम अपनी दृष्टिको व्यापक एवं हृदयको उदार बना सकेंगे। हिन्दूधर्मके रक्षक कहे जानेवाले लोग अपनी पूँजीको विदेशी बैंकोंमें जमा करके रखें और अपने निर्धन एवं विपन्न हिन्दूभाइयोंको रोटी देनेमें कृपणता दिखावें, यह मनोवृत्ति घातक है, धर्म-विरुद्ध भी है। इस सत्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि 'हमारी उपेक्षाके कारण ही लाखों हिन्दू भाई अन्य धर्मोंका पल्ला पकड़ रहे हैं, ईसाई बन रहे हैं।' आपने आग्रहपूर्ण शब्दोंमें धनीमानी लोगोंसे उदार बननेकी अपील की। शुद्धिकरणकी आवश्यकतापर भी आपने जोर डाला।

पण्डित विद्याधर त्रिपाठीने धर्मकी तात्त्विक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बताया कि 'तत्वतः धर्ममें भेद कहीं नहीं है। जिन नीति-नियमोंसे समाज सम्बद्ध होता है, वही हमारा धर्म है। धर्मके दो स्वरूप होते हैं, आन्तरिक और बाह्य।' हिन्दूधर्मकी व्यापकताकी चर्चा करते हुए आपने कहा कि 'हिन्दुस्तानमें रहने वाले सारे लोग, चाहे वे किसी भी जाति, वर्ण अथवा सम्प्रदायके हों, मेरी दृष्टिमें हिन्दू हैं। इतना ही क्यों, जिन लोगोंने हिन्दुस्तानको, भारतीयताको ग्रहण कर लिया वे हिन्दू हैं।' उन्होंने सखेद यह स्वीकार किया कि 'हमारी दुर्बलताके फलस्वरूप ही मुसलमान अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रख सके। हूण, शक आदि अन्य विदेशी जातियोंकी तरह हम उन्हें अपनेमें पचा नहीं सके।'

संस्कृतिकी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए आपने कहा कि 'संस्कृतिका सीधा अर्थ है, अच्छा काम। सम्यक् कृति-संस्कृति। संस्कृतिका सम्बन्ध हमारे आन्तरिक व्यवहारोंसे है, जब कि सभ्यताका बाह्य व्यवहारों से। बुद्धके पहले भी हमारी संस्कृति विदेशोंमें गयी थी, जिसके अवशेष अब भी प्राप्त हैं।

गोष्ठीके मनोनीत सभापति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके प्राच्य विभागके भूतपूर्व अध्यक्ष पं० श्रीकालीप्रसाद मिश्र शास्त्रीने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि 'अपने मूलाधारको छोड़कर हम कहीं ठहर नहीं सकते। हमारा आधार है—वेद। वेद-विहित धर्म है और उसका निषेध अधर्म।'

आपने कहा कि 'आर्य' शब्द विरोध उत्पन्न करनेका कारण बना है। विन्ध्य और हिमालयके मध्यवर्ती भूखण्डको ही आर्यावर्त कहते हैं। दक्षिण भारतमें उत्तर भारतके प्रति जो असन्तोष और विरोध बढ़ा, उसके मूलमें 'आर्य' शब्द ही है।

आपने जोर देकर कहा कि 'अपने धर्मके आधारको अक्षुण्ण रखते हुए अर्वाचीन युगमें राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोणमें परिवर्तन किया जा सकता है और इसीमें प्रवासी हिन्दुओंकी समस्याओंका समाधान निहित है।'

मान्य मिश्रजीने आगे कहा कि 'अपनी भाषा, वेष, भोजनकी रक्षा जरूरी है—ये ही भारतीयताके आधार हैं। हमारी संस्कृतिकी रक्षाके लिए इनका संरक्षण अत्यावश्यक है। हम कहीं भी रहें, इन तीनोंकी रक्षा अवश्य करें, तभी हमारी भारतीयता सुरक्षित रह सकेगी। सिक्ख, मुसलमान अपने आधारको मजबूतीसे पकड़े हुए हैं, फिर हम क्यों पीछे रहें? अपने आधारको हम पकड़े रहें, इसीमें हमारा कल्याण है।'

विहार आर्यप्रतिनिधि-सभाके श्रीरामनारायणशास्त्री, डाक्टर दुक्खनराम और डा० नागेन्द्रपति त्रिपाठीने भी प्रवासी भारतीयोंके प्रति ममत्व दिखाने और धर्म एवं आचारमें समयोचित परिवर्तन करनेकी आवश्यकता बतायी।

गोष्ठीके अन्तमें मांगलिक शास्त्रार्थ भी हुआ जिसमें अनेक विद्वानोंने भाग लिया। गोष्ठीकी खास विशेषता यह रही कि विद्वानोंने अपने विचार सरल संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओंमें व्यक्त किए। गोष्ठीकी शास्त्र-चर्चामें भाग लेनेवाले उपरोक्त विद्वानोंके अतिरिक्त सर्व श्री पं० रंगनाथ पाठक, पं० कमलाप्रसाद मणि त्रिपाठी, पं० विष्णुकांत झा, पं० परमानन्दन शास्त्री, पं० दामोदर पाठक, पं० कौशलकिशोर त्रिपाठी पं० हवलदार त्रिपाठी, सहृदय, पं० जनार्दनशास्त्री खुप्टे, पं० विश्वनाथ पाण्डेय प्रभृति प्रमुख थे। गोष्ठीका आयोजन आयुर्वेद बृहस्पति आचार्य रामरक्षापाठकके सत्प्रयत्नोंका फल था।

●

एक समीक्षात्मक ग्रन्थकी—

समालोचना

कविराज पं० श्रीहरिदत्तजी जोशी प्राणाचार्य

★

प्राचीन भारतमें गोमांस—एक समीक्षा,
संकलनकर्त्ता—श्रीजयदयाल डालमिया,
पृष्ठ-संख्या २२९, मूल्य—दो रुपये,
प्राप्ति-स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर।

विषय—क्या प्राचीन भारतमें ऋषि-मुनि गोमांस भक्षण करते थे? क्या मधुपर्कमें मांस दिया जाता था? क्या गोमेधमें गायकी बलि दी जाती थी? क्या रन्तिदेवके यहाँ अतिथियोंके लिए नित्यप्रति दो हजार गायोंका वध किया जाता था? इन सब प्रश्नोंका जो उत्तर इस पुस्तकमें दिया गया है वह सर्वथा युक्तियुक्त और वेदार्थ-सम्मत है। वास्तवमें इस विषयमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, और समीचीन उत्तर नहीं दे पाते। परन्तु डालमियाजीने संस्कृतके विद्वान् न होते हुए भी विद्वानोंकी सहायतासे और उनके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी सहायतासे जो यह संकलन प्रकाशित किया है, इससे साधारण जनता तो उपकार है ही, साथ-साथ विद्वानोंको भी लाभ पहुँचानेवाला है। इस पुस्तकके अध्ययनसे गोवध-सम्बन्धी चिरसंचित भ्रम दूर हो जायेगा। डालमियाजीका यह प्रयास स्तुत्य है।

गोरे शासकोंकी कुटिल नीति

क्या वेदोंमें गोमांस खानेका विधान है? यह एक ऐसा प्रश्न है जो आजकलके नेता नामधारियोंकी बुद्धिमें उद्वेलित हो रहा है। कुछ समय पहले जगजीवनरामने, जो आजकल कांग्रेसके अध्यक्ष हैं और सुरक्षा-मन्त्री भी हैं, कलकत्ताके सत्यनारायण-पार्कमें भाषण देते समय कहा था कि 'भारतमें हमारे पूर्वज गोमांस खाते थे—यह तथ्य वेदोंसे सिद्ध होता है। उनके इस वक्तव्यपर सभामें उपस्थित हिन्दू-जनता उत्तेजित हुई थी। फलस्वरूप वह सभा बीचमें समाप्त हो गयी थी। इस विषयमें हम जगजीवनरामको दोष नहीं दे सकते, क्योंकि

संस्कृत-भाषाका उन्हें ज्ञान है नहीं है, और वेदोंसे तो वे कोसों दूर हैं। हाँ, अंग्रेजी भाषाका ज्ञान उन्हें अवश्य हो सकता है जिसके बलपर उन्होंने पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा लिखित वेदोंकी व्याख्या पढ़ी होगी। उसके आधारपर ही सम्भव है, उन्होंने उपर्युक्त बात अपने भाषणमें कही। अंग्रेजोंने वेदोंमें गोमांस-भक्षणकी जो बात कही, उसके पीछे भी एक रहस्य है और वह रहस्य यही है कि सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोहका मूल कारण हिन्दू सिपाहियोंका गौकी चर्बीसे वेष्टित बन्दूकोंके टोटोंको अपने दाँतों द्वारा तोड़नेसे अस्वीकार करना था और फलस्वरूप सिपाहियोंको भयङ्कर अमानुषिक यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। तब उस समय उन गोरे शासकोंके मस्तिष्कमें यह बात उपजी थी कि हिन्दुओंके हृदयसे गोसम्बन्धी धारणाओंको वेदोंका उद्धरण देकर ही निकाला जा सकता है। अतएव उन्होंने (कतिपय अंग्रेज विद्वानोंने) संस्कृतका अध्ययन किया और वेदोंकी व्याख्या की। जिसमें यह प्रमाणित करनेकी कुचेष्टा की कि वेदोंमें गोमांस-भक्षणका विधान है और यहाँके ऋषि-मुनि भी गोमांस-भक्षण करते थे, गोमांस-भक्षणका विपुल प्रचार था, विवाहमें गोमांसका मधुपर्क दिया जाता था, बरातियोंको गोमांस परोसा जाता था, श्रोत्रिय अतिथि तथा राजाके आगमनपर एवं ब्रह्मचर्य व्रतका पूर्ण पालन करते हुए वेदाध्ययनके पश्चात् समागत स्नातकको गोमांसका मधुपर्क देना अनिवार्य था, गोमेध यज्ञमें गायकी बलि दी जाती थी एवं यज्ञशिष्ट गोमांसको यजमान सहित ऋत्विक् भक्षण करते थे। इस प्रकारके कुप्रचारसे भारतवासियोंकी गोमातापर श्रद्धाको निर्मूल करनेकी अथक चेष्टा की गयी और वह प्रयत्न अब तक चालू है।

वेद-मन्त्रोंके अर्थमें विवाद

वास्तवमें वेद-मंत्रोंके अर्थमें विवाद अंग्रेजोंने ही उठाया हो, ऐसी बात हम नहीं मानते। वेदोंके अर्थमें विवाद बहुत प्राचीनकालसे चला आता है। इसका मूल कारण यह है कि वेद सम्बन्धी पूर्ण साहित्य प्राचीनकालमें ही लुप्त हो चुका था। यदि वेदसम्बन्धी मूल साहित्य भी पूर्ण प्राप्त हो जाता विशेषकर संहिताएँ और ब्राह्मण-ग्रन्थ तो मूल पाठों और व्याख्याओंके सादृश्यके आधारपर बहुत-से अस्पष्ट स्थलोंका स्पष्टीकरण हो जाता। परन्तु ११३० शाखाओंमें केवल ११ शाखाएँ ही सम्प्रति उपलब्ध हैं। ऋग्वेदकी २१ शाखाओंमें केवल १, यजुर्वेदकी १०० शाखाओंमें केवल ५, सामवेदकी १०,०० शाखाओंमें और अथर्ववेदकी ९ शाखाओंमें केवल ६ शाखाएँ उपलब्ध हैं। यह तथ्य मुक्तिकोपनिषद्से ध्वनित होता है। इसलिए वेदोंकी गृह्यसूत्रोंकी व्याख्या करनेमें कर्काचार्य, जयराम, हरिहर प्रभृति टीकाकार व्यामोहित हो गये हैं। अतएव उन्होंने कलिवर्ज्य प्रकरणका आश्रय लेकर मांसादिकका निषेध किया, जिसका तात्पर्य तो यह हुआ कि अन्य युगोंमें भारतमें गोमांस भक्ष्य था, केवल कलियुगमें ही निषिद्ध माना गया है। यह व्याख्या युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती, क्योंकि अकृष्टपच्य ही मुन्यन्न है। इसलिए ऋषिपंचमीके व्रतमें हलसे बोया गया अन्न नहीं खाते। विकासवादके सिद्धान्तसे भी यह विरुद्ध है जो बन्दरको मानवका आदि पुरुष मानते हैं और बन्दर फलमूल भोजी है।

संस्कृत भाषाकी विशेषता

संस्कृत भाषामें यह विशेषता है कि उसमें एक ही शब्दके व्युत्पत्तिके आधारपर अनेकार्थ किये जा सकते हैं। मूल धातुमें प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर सन्धि और विग्रह, आगम और परिहार द्वारा अनेक अर्थ अपने मनके अनुसार किये जा सकते हैं। फिर वैदिक भाषा तो अत्यन्त प्राचीन है। इसका पूर्ण व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ और सूत्र अनुपलब्ध है। यास्कने वेदार्थ करनेकी अनेक प्रक्रियाओं और प्रणालियोंका दिग्दर्शन कराया है। तथापि प्राचीनकालमें भी वेदमन्त्रोंके अर्थोंमें ऋषियों एवं वैदिक विद्वानोंमें मतभेद रहा है। इस वितण्डावादसे बचनेके लिए ही एक सम्प्रदाय ऐसा उत्पन्न हो गया था जो वेदमन्त्रोंके पाठसे ही पुण्य और कार्य सिद्ध हो जाते हैं ऐसा मानता था। यह कौत्स ऋषिका सम्प्रदाय था जिसने लिखा है अनर्थका हि मन्त्राः—वेद मन्त्रोंका कोई अर्थ नहीं होता। वास्तवमें वेद ही क्या, किसी भी शास्त्र या पुराणके तात्पर्यार्थका ज्ञान विना साम्प्रदायिक गुरु-परम्पराके अनुसार अध्ययन किये नहीं होता। स्वबुद्धिबलसे शास्त्रकी व्याख्या करने वाला स्वयं तो मूढ़ है ही, वह दूसरोंको भी व्यामोहित करता है। इसलिए जो शास्त्र-सम्प्रदायसे शून्य है वह चाहे अन्य शास्त्रोंका कितना भी बड़ा विद्वान् हो, उसकी व्याख्या प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। ऐसे व्याख्याताओंको लक्ष्य करके ही शंकराचार्यजीने लिखा हैं "स्वयं मूढोऽन्यान् व्यामोहयति शास्त्रार्थसम्प्रदायरहितत्वात् श्रुतहानिमश्रुतकल्पनां च कुर्वन् तस्मादसम्प्रदायवित् सर्वशास्त्रविदपि मूर्खवदुपेक्षणीयः।" आश्वलायनका मत है कि गुरुसे शिष्यको प्राप्त शास्त्रज्ञानका नाम ही सम्प्रदाय हैं।

क्या वेद-मन्त्रोंका कोई निश्चित निर्णीत अर्थ नहीं है?

यह एक प्रश्न है कि जब लौकिक संस्कृत और वैदिक भाषाके प्रत्येक शब्दका अर्थ अपनी इच्छाके अनुसार किया जा सकता है तथा एक ही शब्दके कई अर्थ होते हैं। जैसे—गोशब्द पृथ्वी, जल, किरण तथा गव्य पदार्थ दूध, दही और घृतका वाचक है, तब अमुक स्थानमें अमुक शब्दका अमुक अर्थ ही सही है—यह कैसे निर्णय होगा? इसी सन्देहको निवृत्त करनेके लिए मीमांसाशास्त्रकी रचना की गयी जिसमें वेदमन्त्रोंकी निश्चित व्याख्या करनेकी एक निश्चित विधि बतलायी गयी है। "उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् अर्थवादोपपत्ति च षड्भिस्तात्पर्यमुच्यते।" ग्रन्थका उपक्रम किस सिद्धान्तको लेकर किया गया है तथा उपसंहार कहाँ हुआ है। ग्रन्थमें अभ्यास (बार-बार) किस सिद्धान्तका वर्णन है। अपूर्वता—नयी बात क्या कही गयी है जो अन्यत्र नहीं है, और उसका फल क्या हुआ, किस बातकी बार-बार स्तुति या निन्दा की गयी है—इन छः कसौटियों पर कसकर शास्त्रके सिद्धान्तका निर्णय किया जाता है। मीमांसाका सिद्धान्त है कि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः'जो शब्द जिस तात्पर्यसे प्रयुक्त हुआ है उस तात्पर्यका विस्फोरण करना ही उस शब्दका सही अर्थ है। जैसे भोजनके समय प्रयुक्त 'सैन्धवमानय' इस वाक्यके 'सैन्धवम्'पदका अर्थ नमक होता है और यात्राके समय प्रयुक्त सैन्धवशब्दका अर्थ 'घोड़ा' है। यात्राके समय

प्रयुक्त सैन्धव शब्दका नमक अर्थ समझना और भोजनके समय प्रयुक्त 'सैन्धवमानय'का अर्थ 'अश्वलाओ' समझना गलत है। क्योंकि वक्ताका तात्पर्य उसमें नहीं है। इसी प्रकार अनेकार्थवाचक शब्दका सही तात्पर्य निकाला जाता है। हरएक शब्दमें विशेषकर वाच्यार्थसे तात्पर्यार्थ ही प्रधान माना गया है; इसलिए कहा गया है कि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' शब्दका जो तात्पर्यार्थ है, वही सही है और वाच्यार्थ गौण है। वेदमें प्रयुक्त मांस, शिरा, स्नायु, त्वचा आदि शब्द पशुअङ्गोंमें तथा फल-अङ्गोंमें भी प्रयुक्त हुआ है। कहाँपर किस तात्पर्यसे कौन शब्द प्रयुक्त हुआ है? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि जो ग्रन्थके महान् प्रतिपाद्य सिद्धान्तके अनुकूल है वह अर्थ सही है; और जो उसके विपरीत अर्थ है वह गलत है, चाहे वह प्राचीन भाष्यकारों द्वारा ही किया हुआ क्यों न हो, सर्वथा अमान्य है।

मांस शब्द वेदोंमें कई स्थलोंमें आया है। खासकर मधुपर्कमें मांस शब्दका जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ मांस शब्दका तात्पर्यार्थ क्या है—यह हमें देखना है। जैसे 'नामांसो मधुपर्को भवति' (आश्वलायनगृह्यसूत्र), 'न त्वेव मांसो मधुपर्कः स्याद्' (पारस्करगृह्यसूत्र)— इन दोनों गृह्यसूत्रोंके उपर्युक्त सूत्रोंको प्रक्षिप्त कहना एक साहसका काम है। क्योंकि दोनों सूत्र प्राचीन प्रतियोंमें भी ज्योंके त्यों हैं और मधुपर्कमें मांस-विधान कहीं है भी नहीं। 'आज्यं, दधि मधुमिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधाः (तन्त्रसार)। दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सिता ताभिस्तु पंचभिः। प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवोपतुष्टये। (कालिकापुराण अ० ७) कांस्यपात्रसमायुक्तं दधि मधु घृतैर्युतम्। मधुपर्कः स विज्ञेयो मित्रस्य त्वा प्रतीक्षते॥ दधि मध्वानीय सर्पिर्वा मध्वलाभे (आश्वलायनगृह्यसूत्र)। आहरन्ति विष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कं दधिमधुघृतमिश्रितं कांस्ये कांस्येना पिहितम्। (पारस्करगृह्यसूत्र।) इत्यादि। अनेक प्रमाणोंके आधारपर यह निःसंकोच और निःसन्देह कहा जा सकता है कि मधुपर्कमें मांसका संसर्ग है ही नहीं। नामांसो मधुपर्कःका अर्थ-पशु-मांसपरक नहीं हो सकता। यहाँ मांस शब्दसे फलोंका पिच्छिल गुद्दा हो या दूध दहीमें रहनेवाला स्निग्ध घृतादि मांसवर्द्धक होनेसे मांसल या मांस कहे जाते हैं। अतएव मांस शब्दसे फलका मांसल भाग (गुद्दा) या मलाई सहित दूध-दहीका तात्पर्य है। मलाई निकाले हुये दूध-दहीका निषेध ही 'नामांसो मधुपर्कः' का तात्पर्यार्थ उचित है और अर्थ, प्रकरण, लिङ्ग अन्य शब्दकी सन्निधिके अनुसार सही अर्थ होगा। अन्यथा तात्पर्य विरुद्ध भी अर्थ होनेकी सम्भावना निश्चित है। ऋग्वेद ६, ४, २१ की ऋचामें 'स्वादू रसो मधुपेयो वराय'—मीठा स्वादु रस वरको मधुपर्कमें देना लिखा है। मांस न तो पेय है और न मीठी वस्तु, जिसे दूध-दहीके साथ कोई पकाता हो। मांस तो तामसिक पदार्थ है जैसे लहसुन, तीखे मीर्च-मसालोंके साथ ही तैयार किया जाता है और उसे मद्यका सङ्ग प्राप्त होता है। दूध-दही खीरके साथ मांस मिलाकर या कच्चा मांस कोई नहीं खाता। आनूपमामिषं माप क्षौद्र क्षीरविरुद्धकैः। विरुध्यते सह…(अष्टाङ्गहृदय सूत्र ७) इस सूत्रसे स्पष्ट ही मधु और दूधके साथ मांस भक्षण विष समान विरुद्ध आहार कहा है, तो उसे वर या किसी वरिष्ठका पेय कैसे माना जा सकता है?

वेदका महासिद्धान्त

हर एक शास्त्रका एक मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है और वही उस शास्त्रका महासिद्धान्त होता है। जैसे योगशास्त्रका प्रतिपाद्य विषय चित्तवृत्तिनिरोध है। सांख्यशास्त्रका प्रकृतिपुरुष विवेचन है। वेदान्तशास्त्रका 'अद्वैत ब्रह्म' प्रतिपाद्य विषय है। अगर कोई इनके प्रतिपाद्य विषयसे विपरीत अर्थ इन शास्त्रोंके किसी वचनको लेकर करे तो वह उसका तात्पर्यार्थ नहीं माना जा सकता; चाहे उसका शब्दार्थ खींचतान कर दूसरे अर्थमें ठीक ही क्यों न हो। इसी प्रकार वेदके तात्पर्यसे विरुद्ध किसी वैदिक मन्त्रका कोई अर्थ चाहे वह शब्दानुकूल यथार्थ हो, परन्तु तात्पर्यार्थ-विरुद्ध होनेसे सर्वथा गलत होगा। यह बात पुराणपर भी लागू है। पुराणोंमें बहुत-सी ऐसी गाथाएँ भरी पड़ी हैं जो हैं तो वैदिक, परन्तु वेदोंका गुरु समाम्नाय छूट जानेसे टीकाकार उनके वास्तविक रहस्यको प्रकट नहीं कर सके। यद्यपि पुराण वेदार्थ उपबृंहणके लिए ही रचे गये थे।

वेदका महासिद्धान्त—'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि, मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।' इन मन्त्रोंमें सर्वप्राणिहिंसावर्जन तथा प्राणिमात्रको मित्र दृष्टिसे देखनेका विधान है। फिर गाय जिसको वेद 'अघ्न्या, अदितिः' कहता है उसके वधकी तो कल्पना ही कैसे हो सकती है?

वर जब प्रथम मधुपर्कका दर्शन करता है तब इस मन्त्रको पढ़ता है—मित्रस्येति मधुपर्कं प्रतीक्षते (आश्वलायनगृह्यसूत्र) मधुपर्कका निरीक्षण करते समय इस मन्त्रका पठन करता है, जिसका भाव प्राणिमात्रको मित्रदृष्टिसे देखनेकी प्रार्थना है। क्या इस प्रकारकी प्रार्थना करनेवाला कभी गौकी हिंसा कर गोमांस खा सकता है? इसी प्रकार गोचर्मपर बैठनेकी बात भी अर्थभ्रान्तिमूलक है। गोमेधमें गोहिंसा नहीं होती थी।

'आलम्भन'का अर्थ

आलम्भन शब्द स्पर्शार्थमें आता है। यज्ञोपवीत संस्कारमें गुरु शिष्यका हृदयालम्भन करता है 'अथास्य ब्रह्मचारिणः दक्षिणांसमधिहृदयम् आलभते।' विवाहमें वर-वधूका हृदयालम्भन करता है 'वरो वध्वा दक्षिणांसमधिहृदयम् आलभते।' इसी प्रकार भागवतमें भी पशुका स्पर्श और दान ही यज्ञमें प्रशस्त बताया है 'तथा पशोरालभनं न हिंसा'। अतः गोमेधमें गौकी बलि नहीं दी जाती थी—यह निश्चित है। आलम्भन शब्द स्पर्श और दानार्थमें ही उपयुक्त और युक्तिसंगत है। वास्तवमें वेदोंका सही तात्पर्य समझनेके लिए निष्पक्ष विद्वानोंकी एक समिति हो, उसे राज्यद्वारा आर्थिक संरक्षण तो मिले, किन्तु वैचारिक दबाव न हो। तभी यह सम्भव है कि विद्वान् वेदोंके सही तात्पर्य जनताके सम्मुख कर सकेंगे।

वेदोंकी भाषा कहीं सरल है और कहीं परोक्ष। 'परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं च मम प्रियम्।' जैसे मांसशब्द मांसका वाचक प्रसिद्ध है, पर मांस शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ

मनन भी है, यथा मन्यते जानीते वस्तुगुणागुणौ येन स मांसः (मन ज्ञाने दिवादिः मनेर्दीर्घश्च, उणादि ३।५१ से मांस शब्द बनता है जिसका अर्थ वस्तुतत्त्वका विचार करना होता है। मांसं मननं मतोऽस्मिन् सीदति, इति वा निरुक्त ४।३) अतः मांस शब्दका अर्थ मनन, निरीक्षण, परीक्षण भी होता है। अतः 'नामांसो मधुपर्कः' का तात्पर्य सम्यक्परीक्षित मधुपर्क होता है जो वरको राजाको श्रोत्रियको स्नातकको मधुपेय दिया जाय वह सम्यक् परीक्षित होना चाहिए। यह युक्तियुक्त भी है। 'नत्वेवामांसो मधुपर्कः स्यात्।' अर्थात् अमांस अपरीक्षित मधुपर्क कभी भी नहीं देना चाहिए। चरकमें जहाँ अहित आहारोंकी गणनाकी है, वहाँ (गोमांसं मृगमांसानां) पशुमांसोंमें गोमांस अहित हानिकारक बताया है। अतः उसका मधुपर्क और आतिथ्यमें प्रयोग दिव्यदर्शी ऋषि नहीं कर सकते। आयुर्वेदमें मांस शब्द फलमज्जामें, अस्थिशब्द गुठली या गूँठीमें तथा त्वचा शब्द छिलकेके अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं। जैसा कि 'भल्लातकास्थ्यग्निसमं त्वग् मांसं स्वादु शीतलम्'—(चरक० सूत्र: अ० २७।) अतः उक्त गृह्यसूत्रोंके वाक्यांशोंका वही अर्थ सही है, जो ऊपर विवेचित है। पर्क शब्द पृची धातुसे बनता है। सम् सम्यक् पर्क (मिश्रण) उन्हीं तत्त्वोंका हो सकता है जो समान गुणधर्मक हैं, गोमांस न तो दूध दही मधुके समान धर्मवाला है, न उनमें मिलकर एकाकार हो सकता है, फलतः मधुपर्कमें उसका सम्पर्क ही नहीं हो सकता।

●

सदाचारकी श्रेष्ठता

सदाचार ही मानवताका परिचायक है। सदाचार ही उसे धारण करनेवाला धर्म है। वही मनुष्यको परमेश्वरके स्नेहसे बाँधनेवाला सूत्र है। अतः सबको सदाचारके पथसे चल कर परमेश्वरको पाने तथा उनके स्वरूपभूत परमानन्दकी अनुभूति प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

●

अमेरिकन-अंग्रेज हरिभक्तों द्वारा

श्रीकृष्ण नामकीर्तन और उपदेश[1]

प्रेषक—श्रीराममनोहर सिंह बी० ए०

★

विगत नवम्बर मासमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीराधाकृष्णकी प्रतिमाओंके सामने जिस समय अमेरिकन तथा जापानी श्रीकृष्णभक्त अपने हाथोंमें श्रीमद्भागवत, श्रीकृष्णभक्तिसे ओत-प्रोत अन्य ग्रन्थ, अमेरिकासे निकलनेवाली श्रीकृष्णभक्ति सम्बन्धिनी मासिक पत्रिकाएँ, श्रीकृष्ण-चित्रावली तथा अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीराधाकृष्णके और उनके बालस्वरूपके सुमनोहर सुन्दर-सुन्दर चित्र लिये झाँझ-मजीरे आदिके साथ पिलखुआमें पधारे, उस समय इन श्रीकृष्णभक्तोंका दर्शन करके सब लोगोंका हृदय आनन्द-गद्गद हो गया और सभी भक्तिरसकी मन्दाकिनीमें अवगाहन करने लगे। इन सब श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजोंने सभा-स्थानमें आकर सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णके सामने पृथ्वीपर लेटकर बड़ी ही श्रद्धा भक्तिके साथ साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अंग्रेजोंकी यह अद्भुत श्रीकृष्णभक्ति तथा प्रेम देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये।

परम वैष्णव श्रीकृष्णभक्त अमेरिकन अंग्रेज श्रीगुरुदासजीने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणामकर सर्वप्रथम श्रीसरस्वतीजी तथा अपने परम पूज्यपाद श्रीगुरुदेव श्री ए० सी० भक्ति-वेदान्तजी

---

१. गत नवम्बर मास १९७० में सुप्रसिद्ध भक्त श्री रामशरणदासजीके स्थानपर (पिलखुआ जिला मेरठमें) सुविख्यात उद्योगपति श्रीमान् सेठ श्रीजयदयालजी डालमिया सपत्नीक पधारे। उनके साथ ही अमेरिकाके अंग्रेज श्रीकृष्णभक्त श्रीगुरुदासजी, शिकागोके सन्त श्रीकृष्णभक्त श्रीगोपालदासजी तथा जापानी हरिभक्त श्रीब्रह्मप्रभुजी आदि विशेष अतिथिके रूपमें शोभा पाते थे। सेठजीके साथ अन्यान्य गण्य-मान्य सज्जन भी थे। भक्त श्रीरामशरणदासजीने इन समादरणीय समागत महानुभावोंका नागरिकोंकी अपार भीड़के साथ भव्य स्वागत किया। फिर इन वैष्णव भक्तोंने वहाँ नामसंकीर्तनके द्वारा भक्ति-भावकी पावन गङ्गा बहाकर सबको परम प्रेमरससे सराबोर कर दिया। इस वृत्तान्तके प्रत्यक्षदर्शी महानुभावोंने उसका विवरण तैयार करके श्रीकृष्ण-सन्देशमें प्रकाशनार्थ भेजा है। वही विवरण कुछ संक्षिप्त करके यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पादक

महाराज प्रभुपादका स्मरणकर भगवान् श्रीकृष्णके भारतकी विवेचना करते हुए कहा कि 'अमेरिका आदि पश्चिमी देशोंमें अपार सम्पदा और भौतिक सुख-सुविधाओंके बावजूद मानसिक शान्ति नाम मात्रकी भी नहीं है। भारतके परम वैष्णव महान् सन्तपूज्यपाद गुरुदेव श्री ए० सी० भक्ति-वेदान्त प्रभुपादजी महाराजने श्रीकृष्णतत्त्व और भारतीय हिन्दू-दर्शनकी प्रत्यक्ष अनुभूति कराकर हमें मानसिक शान्ति प्रदान करनेके साथ-साथ शारीरिक चेतना भी दी है। हम श्रीकृष्ण और आध्यात्मिकताकी अनुभूति करनेके बाद इस परिणामपर पहुँचे हैं कि इस संसारमें एकमात्र सार भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

आगे परम वैष्णव अंग्रेज श्रीगुरुदासजीने भारत यात्रापर अपनी निराशा व्यक्त करते हुए कहा 'हम भारतको धर्मप्राण ऋषियोंकी भगवान् श्रीकृष्णके पावन चरणोंसे पवित्र परम पुण्य-भूमि मानकर यहाँपर आये थे, किन्तु जब हम यहाँके नागरिकोंको भौतिकवाद और पश्चिमी सभ्यताका अन्धानुकरण करते देखते हैं तो हमें उस समय भारी निराशाके साथ घोर दुःख होता है। भारतमें बढ़ता हुआ पश्चिमी देशोंका अन्धानुकरण भारतके प्राणभूत धर्मके लिए बड़ा ही घातक सिद्ध होगा तथा भारत अपने वैशिष्ट्यको खोकर कहींका भी नहीं रहेगा।'

अमेरिकी श्रीकृष्णभक्तने आगे अपने भाषणमें भारतके देवमन्दिरोंकी दुर्दशापर खेद व्यक्त करते हुए कहा कि 'हमारे देशके भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरोंमें यहाँके देवमन्दिरोंसे कहीं अधिक स्वच्छता रहती है और वहाँपर यहाँसे कहीं अधिक विधि-विधानसे भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा अर्चना की जाती है। हमारे इस जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति और भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नता प्राप्त करना होना चाहिए और हमें अपना हर समय, प्रत्येक क्षण भगवान् श्रीकृष्णके नामामृतका पान एवं श्रीकृष्ण-स्मरण करते हुए ही व्यतीत करना चाहिए।'

अमेरिकी श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज श्रीगोपालदासजीने कहा कि 'अमेरिकामें हजारों सम्पन्न नर-नारी वैष्णव हिन्दू-धर्मकी शरणमें आकर श्रीकृष्णभक्तिमें लीन हो रहे हैं और वहाँके भौतिकवादसे ऊबे हुए सब लोगोंके हृदयको आध्यात्मिकताकी ओर आकृष्ट होनेकेलिए प्रबल प्रेरणा प्राप्त हो रही है।

तदनन्तर, भारतके सुप्रसिद्ध उद्योगपति सेठ श्रीजयदयालजी डालमियाने, अपने महत्त्वपूर्ण भाषणमें कहा कि 'यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि जहाँ हम भारतवासी भौतिकवाद तथा भोग-विलासकी ओर बड़ी तेजीसे बढ़ रहे हैं और अपनी भारतीय सभ्यता-संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर अंग्रेजी फैशनसे रहनेमें ही महान् गर्व और गौरवका अनुभव कर रहे हैं, अंग्रेजी वेशभूषा एवं अंग्रेजी खान-पानमें आज अंग्रेजोंको भी मात कर रहे हैं, वहां ये अमेरिकी और जापानी श्रीकृष्ण-भक्त, जो आज आपके सामने विराजमान हैं, मांस, मदिरा, अण्डे, मुर्गे आदि ही नहीं, अपितु तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, चाय और काफी तकको पीना पाप समझते हैं। ये इन सबका सर्वथा परित्याग कर चुके हैं और इन वस्तुओंको हाथ भी नहीं लगाते हैं। शुद्ध शाकाहार और दुग्धाहारपर रहकर भारतीय धोती आदि वस्त्र पहनकर श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारमें संलग्न हैं। इनका जीवन अत्यन्त सादा, सात्त्विक

और भारतीयतासे ओतप्रोत हैं। ये अपने सिरपर लम्बी-लम्बी चोटी, मस्तकपर वैष्णव तिलक और गलेमें श्रीतुलसीकी कण्ठी धारण किए हुए हैं। जब कि आजके भारतीय हिन्दू अपनी चोटी तिलक और कण्ठीको रखना फैशनके विरुद्ध समझ रहे हैं और इन पवित्र चिह्नोंको धारण करना अपनी शानके खिलाफ समझते हैं। आपने अभी-अभी प्रत्यक्ष देखा है कि ये श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज किस प्रकार नम्रतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णको अपना परम इष्टदेव मानकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते हैं। इसके विपरीत दूसरी ओर हमलोग हैं कि जो बस दूरसे हाथ हिलाकर ही प्रणाम किया गया समझ लेते हैं। आशा है कि यहाँकी ग्रामीण जनता इन विदेशी श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजोंके जीवनसे कुछ शिक्षा लेगी और अपने हिन्दूधर्मपर दृढ़ रहकर प्राचीन भारतीय हिन्दू वेशभूषाको पुनः अपनायेगी।'

सेठ श्रीजयदयाल डालमिया, जापानी श्रीकृष्णभक्त श्रीब्रह्मप्रभुजी, अमेरिकन हरिभक्त श्रीगुरुदासजी, अधिकारी तथा श्रीब्रजमोहन 'मधुर' आदि

जिस समय ये अमेरिकन और जापानी श्रीकृष्णभक्त हिन्दू-वेशभूषाको धारण किए अपने हाथोंमें झांझ मजीरे आदि लेकर भगवान् श्रीराधाकृष्णके सामने श्रीकृष्णप्रेममें विभोर होकर झूम-झूम कर नृत्य करते हुए—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

की परम पवित्र ध्वनि करने और—

गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय॥

—बोलकर प्रेमातिरेकसे भगवन्नामोंके गीत गाने लगे, उस समय अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया और सभी भक्तिकी गंगामें गोते लगाते हुए श्रीकृष्ण-प्रेममें सराबोर हो मस्तीमें झूमने लगे, उस समय जो अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ वह वर्णनातीत है। इन श्रीकृष्ण भक्त अंग्रेजोंने जनताको चैलेंज दिया कि 'जिस किसीको भी यहाँपर भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें किसी प्रकार कोई शङ्का हो वह हमसे इस समय निःसंकोच पूछ सकता है, हम उसका समुचित उत्तर देंगे।'

कुछ लोगोंने प्रश्न किये जिसका श्रीकृष्णभक्त परम वैष्णव श्रीगुरुदासजीने श्रीकृष्ण भक्तिसे भरपूर और शास्त्रोंके, उपनिषदोंके, गीताके श्लोक बोलकर प्रमाण दे-देकर प्रत्येक शङ्काका समुचित उत्तर दिया। वह उत्तर सुनकर शङ्का करनेवाले लोग निरुत्तर हो गये और जनता सुनकर गद्‌गद एवं प्रेमविभोर हो 'वाह-वाह! धन्य-धन्य!' कह उठी। उनके अंग्रेजीमें दिये प्रश्नोंके उत्तरका तत्काल माननीय श्रीमुरलीधरजी मल्होत्रा एवं सेठजीके साथ पधारे एक दूसरे सज्जन हिन्दी अनुवाद करके सबको सुनाते जाते थे। इसकी जनतापर बड़ी गम्भीर छाप पड़ी और सभी बड़े प्रसन्न और प्रभावित होते देखे गये। बादमें सभी श्रीकृष्ण भक्त अंग्रेजोंने और माननीय सेठ श्रीजयदयालजी डालमिया तथा आपके साथ आये सभी सज्जनोंने भक्त रामशरणदासजीके चित्र संग्रहालयका अत्यन्त रुचिपूर्वक निरीक्षण किया और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीशिव; श्रीगणेश आदि सभी पूज्य अवतारों तथा पूज्य देवी-देवताओंके, ऋषि-मुनियोंके और धर्मवीरोंके चित्रोंके समक्ष लेटकर बड़ी श्रद्धाभक्तिके साथ साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् श्रीराधाकृष्ण, भगवती सीता एवं भगवान् रामको बड़े प्रेमसे हाथ जोड़े। इस प्रकार उनकी अद्भुत श्रद्धाभक्ति देखकर सबलोग आश्चर्यचकित रह गये।

(भारतीय भोजनपर मुग्ध)

अमेरिकी श्रीकृष्ण भक्तोंको-भक्त रामशरणदासजीने भारतीय प्राचीन पद्धतिसे पृथ्वीपर आसन बिछाकर उनपर बिठाकर भोजन कराया। पेड़ा, रसगुल्ला, बालूशाही आदि मिष्टान्न पदार्थोंमें उन्होंने अधिक रुचि ली तथा कहा कि 'भारतीय हिन्दू-भोजन विश्वके सभी भोजनोंसे परम सात्त्विक, सुस्वादु और श्रेष्ठ है। सभीने भोजन करनेसे पहले भगवान्‌को भोग लगानेके लिए तुलसीपत्रकी माँग की और भगवान्‌को बड़े प्रेमसे मन्त्र बोलकर भोग लगाया, तब श्रीभगवत्‌प्रसाद ग्रहण किया। श्रीभगवत्‌प्रसाद ग्रहण करनेसे पूर्व और उसे पा लेनेके पश्चात् पृथ्वीपर अपना माथा टेककर प्रणाम किया। फिर अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण और ध्यान किया। भोजन करनेके लिए वे जब पधारे उस समय अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीराधाकृष्णको अपने साथमें लाये, जिससे उन्हें भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण कर सके। ऐसा था उनका अद्भुत विलक्षण श्रीकृष्णप्रेम, जिसे देखकर सभी विस्मय-विमुग्ध हो गये।

शहरके बड़े-बड़े सुप्रतिष्ठित सज्जन पधारे हुए थे। वे इन परम वैष्णव श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजोंको पूर्णरूपसे भारतीय हिन्दू वेश-भूषामें देखकर दंग रह गये। इन्हें श्रीकृष्ण प्रेममें गद्‌गद हो श्रीराधाकृष्णके सामने मजीरा बजाते हुए—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

का सुमधुर संकीर्तन करते और मस्तीमें उछलते कूदते देखकर सबलोग प्रेमविभोर हो गये। ऊपरसे इन श्रीकृष्णभक्तोंके ऊपर पुष्पवृष्टि की जा रही थी। इन परम सौभाग्यशाली श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजोंने जहाँ अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णके लिए अपना देश, जाति, मत-मजहब, वेषभूषा, सभ्यता-संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन आदि सब कुछ न्यौछावर कर दिया है वहीं ये इतने महान् जितेन्द्रिय बन गये हैं कि इन्होंने मांस-मदिरा, अण्डे-मुर्गी, सिगार सिगरेट, चाय काफी आदिका भी बिल्कुल परित्याग कर अपना परम सात्त्विक और त्याग-तपस्यामय जीवन बना लिया है। क्या भारतीय सभ्यता संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर अपने हाथों अपनी चुटिया कटाकर काले अंग्रेज बननेवाले, अंग्रेजोंके मानसपुत्र पथ-भ्रष्ट हिन्दू इन श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजोंके जीवनसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे? भगवान् सबको सुबुद्धि दें। सनातन धर्मकी जय।

●

श्रीकृष्ण ही सबके परम आश्रय हैं

भगवान् श्रीकृष्ण ही सबके आश्रय हैं, आधार हैं। वे ही सर्वेश्वर, सर्वाधार तथा सर्वसुहृद है। आपको कुछ नही चाहिए, तो श्रीकृष्णका भजन कीजिये। आप सब कुछ चाहते हों तो भी श्रीकृष्णकी ही शरण लीजिये। मोक्ष, परमानन्द, ब्रह्म-साक्षात्कार, जो भी आपको अभीष्ट हो, उसके लिये तीव्र भक्तियोगद्वारा परम पुरुष श्रीकृष्णकी ही समाराधना कीजिये। वे ही जीव-जगत्‌की चरम तथा परम गति हैं।

●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचपर

श्रीहरिदास-जयन्ती-समारोह

एक छविकार दर्शक

★

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज केवल वृन्दावन और व्रजप्रदेशके ही नहीं, सारे भारत-वर्षकी विमल विभूति थे। वे रागानुरागके महाकवि, रसिकोपासनाके प्रधान प्रवर्तक और श्रीराधामाधवकी निकुंज-लीलाके अद्वितीय गायकके रूपमें सदा-सर्वदा स्मरण किये जाते रहेंगे। उन्होंने भारतीय संगीतको ऐसा दिव्य जीवन प्रदान किया कि वह भगवत्कृपाकी प्राप्तिका सरल साधन बनकर सम्मानके सर्वोच्च शिखरपर समासीन है। सम्भवतः उन्हींके सरस-मधुर संगीतसे रीझकर किसी भक्त कविने भगवान्‌से यह घोषणा करवायी कि "मैं वैकुण्ठमें वास नहीं करता, योगियोंके हृदयोंमें भी निवास नहीं करता; मैं तो वहाँ विद्यमान रहता हूँ, जहाँ मेरे भक्तगण मेरी गुणावलीका गायन करते हैं।"

अतः ऐसे महान् संगीत-साधक संतशिरोमणि स्वामी श्रीहरिदासजीके चरणोंमें अपनी-अपनी कला निवेदित करनेके लिए देश-विदेशके कलाकारोंका लालायित होना स्वाभाविक ही है। मथुराकी "श्रीहरिदास-संगीत-समिति" को इस बातका श्रेय है कि वह अनेक वर्षोंसे देशके बड़े-बड़े संगीतज्ञों, नृत्य-विशारदों और वादकोंको आमन्त्रित करके उन्हें स्वामीजीके प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करनेका सुअवसर प्रदान करती है। पिछले वर्षोंसे देशके अनेक गण्यमान्य मूर्धन्य कलाकार मथुरा-वृन्दावन आकर स्वामीजीके प्रति अपनी-अपनी श्रद्धाका समर्पण कर चुके हैं।

इस वर्षके प्रमुख कलाकारोंमें श्री एम० आर० गौतम, कुमारी प्रभा आत्रेय और कुमारी रंजना मुखर्जीने क्रमशः काशी, बम्बई तथा कलकत्तासे पधारकर कण्ठ-संगीत प्रस्तुत किया। झवेरी बहिनों और श्रीमती कनक रेलेने मणिपुरी और कथकली नृत्य किये। उस्ताद अमजद अली खाँ और श्रीहलीम जाफर अली खाँने सरोद तथा सितार बजाये। इन सबके साथ श्रीइन्द्रलालने सारङ्गीसे और श्रीप्रेमवल्लभने तबला-वादनद्वारा संगत की। ये सभी चोटीके कलाकार हैं और अपने-अपने कार्यक्रमों द्वारा देश-विदेशमें समादृत हो चुके हैं। इनके गायन, वादन ओर नर्तनसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचका वातावरण दिव्य हो उठा तथा सभी श्रोता एवं दर्शक भाव-विभोर हो गये।

यहाँ कुछ कलाकारोंके चित्र दिये जा रहे हैं:—

●
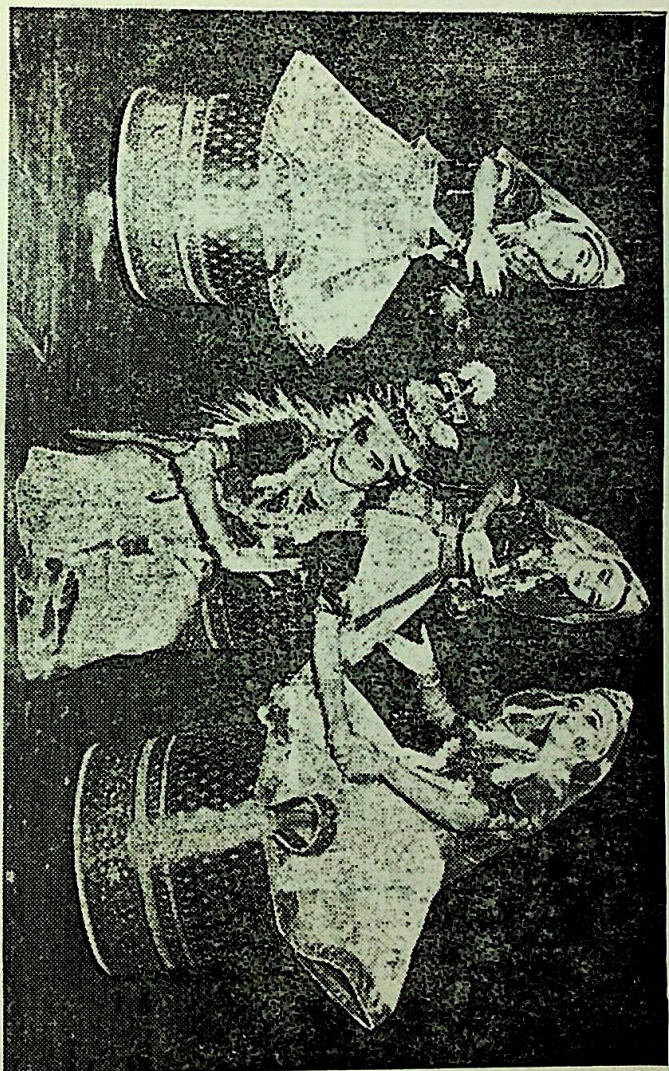
झवेरी बहिनें मणिपुरी नृत्य-कला प्रदर्शित कर रही हैं

श्री हलीमजाफर खाँ तबला-वादक श्री प्रेमवल्लभके साथ सितार-वादन कर रहे हैं

उस्ताद श्री अमजद अली खाँ सरोद-वादनका चमत्कार दिखा रहे हैं

कुमारी रंजना मुखर्जी शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत कर रही हैं

श्रीमती कनक रेले कथकली नृत्यका प्रदर्शन कर रही हैं

६ फरवरीसे १२ मार्चतक के व्रत एवं त्यौहार

१. माघ शुक्ल एकादशी व्रत	शनिवार	६-२-७१
२. ” ” प्रदोष	रविवार	७-२-७१
३. माघी पूर्णिमा (माघस्नान-समाप्ति)	बुधवार	१०-२-७१
४. फाल्गुन कृष्ण एकादशी	रविवार	२१-२-७१
५. महाशिवरात्रि व्रत तथा भौमप्रदोष	मंगलवार	२३-२-७१
६. फाल्गुन शुक्ला एकादशी	रविवार	७ मार्च १९७१
७. भौम प्रदोष फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी	मंगलवार	९-३-७१
८. होलिकादाह फा० शु० पूर्णिमा	गुरुवार	११ मार्च १९७१
९. वसन्तोत्सव फाल्गुन शु० १५	शुक्रवार	१२ मार्च १९७१

विषयोंमें गुण-बुद्धि होनेसे भारी हानि

विषयोंमें कहीं भी गुणोंका आरोप करनेसे उस वस्तुके प्रति आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होनेसे उसे अपने पास रखनेकी कामना हो जाती है और इस कामनाकी पूर्तिमें किसी प्रकारकी बाधा पड़नेपर लोगोंमें परस्पर कलह होने लगता है। कलहसे असह्य क्रोधकी उत्पत्ति होती है और क्रोधके समय अपने हित-अहितका बोध नहीं रहता है, अज्ञान छा जाता है। इस अज्ञानसे शीघ्र ही मनुष्यकी कार्याकार्यका निर्णय करनेवाली व्यापक चेतना-शक्ति लुप्त हो जाती है। चेतना-शक्ति अर्थात् स्मृतिके लुप्त हो जानेपर मनुष्यमें मनुष्यता नहीं रह जाती, पशुता आ जाती है और वह शून्यके समान अस्तित्वहीन हो जाता है। फिर उसकी अवस्था वैसी ही हो जाती है, जैसे कोई मूर्छित या मुर्दा हो। ऐसी स्थितिमें न तो उसका स्वार्थ बनता है और न परमार्थ ही। विषयोंका चिन्तन करते-करते वह विषयरूप हो जाता है। उसका जीवन वृक्षोंके समान जड़ हो जाता है। उसके शरीरमें उसी प्रकार व्यर्थ श्वास चलता है, जैसे लुहारकी धौकनीमें हवा। उसे न अपना ज्ञान रहता है, न किसी दूसरे का।

[श्रीमद्भाग० ११।२१।१९-२२]

* श्रीसूक्त *

श्रीमन्मथकुमार मिश्र

(१)

राष्ट्र श्री ! शत शत वन्दन ।
सुषमित हिरण्यवर्णा हरिणि ! हेम-रजतका हार धरे
कनक-रूप वैभव विलासिनी-चन्द्रे ! विद्युत्-स्फूर्ति भरे
तेरी महिमासे ज्योतित है—देवलोकका वन नन्दन
विजय विधायिनि-कोटि नमन
राष्ट्र ऋद्धि नव अभिनन्दन

(२)

अरुण अर्ककी अमित प्रभा-शत पद्म निवासिनि हे कमले !
वनश्रीं जये ! वनस्पति-राजित-बिल्व-विलासिनि जय विमले !
अश्व-हस्ति रथ मध्य सुशोभित-सुरभित कण-कण नव चन्दन
सिद्धि प्रदायिनि-प्रणत नमन
हेममालिनि-अभिनव वन्दन

(३)

जनगण श्रेय विधायिनि वरदे ! हस्तिनाद-अनुबोधिनि धनदे !
विष्णुप्रिये ! जय चारु-विहासिनि-जलज विहारिणि सुरकुल-सुखदे !
मणि-रत्नोंसे भूषित करिवर-हेम-कुम्भ-जलधारा-सिंचन
गन्ध-सुपोषित यश-परिमण्डन, तुष्टि-पुष्टिकर दैन्य विमोचन
सुख समृद्धि दे ! विनत नमन
विजयश्री-शत शत वन्दन

(४)

रूप लता परिमल ललिता जय कल्पलता लावण्यलता
जय सुरबाला विभव-विशाला जय सुख राशी हरिवनिता
कोटि हेम कलशोंसे जननी दुसह दैन्यका परिभव खंडन
विजय श्रीको कोटि नमन
राष्ट्र श्री ! शत शत वन्दन

•

सूक्ति-सुधा

[भगवान्के भरोसे निश्चिन्त रहें, कहीं हाथ न फैलायें]

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥

क्या राहों में नहीं पड़े हैं फटे पुराने चीवर चीर ?
भीख न देते परपोषक तरु क्या सूखे नदियोंके नीर ?
रुद्ध गुफाएँ हुईं ? न करते क्या प्रपन्न-पालन भगवान् ?
दुर्मदान्ध धनियोंका सेवन क्यों करते कविजन विद्वान् ?

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्ययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥

आदि पुरुष करते जो जगका सदा सर्ग, पालन, संहार,
जिनकी नहीं योगमायाका योगेश्वर भी पाते पार ।
वे ही योगक्षेम हमारा सिद्ध करेंगे त्रिभुवननाथ;
क्या होगा हम सब यदि इसकी चिन्ता करें, खपावें माथ ? ।।

(श्रीमद्भागवतसे)

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, दुण्ढिराज, वाराणसी-१ में मुद्रित एवं प्रकाशित